गुलामीसे उद्धार ।

(टालसटाय-विचार-संग्रह ।)

सम्पादक—

मूलचन्द्र अग्रवाल बी० ए०

प्रकाशक—

"विश्वमित्र" कार्यालय,

२११ टेमर लेन, कलकत्ता ।

प्रथम बार २००० } सन् १६२२ संवत् १६७६ } मूल्य १)



विषय सूची।





प्रस्तावना ।

महात्मा गांधीने भारतमें जो अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया, उसके कारण रूसके सुप्रसिद्ध काउण्ट टाल्सटायके सम्बन्धमें भारतीयोंको बहुत कुछ जाननेकी इच्छा हुई। टाल्सटायकी लिखी हुई पुस्तकें स्वयं महात्मा गाधीने भी पढ़ीं और उनमें प्रकट किये हुए विचार पसन्द किये। रूसी दार्शनिकने अहिंसात्मक असहयोगका पक्ष बड़ी दृढ़ताके साथ समर्थन किया है और ससारके सब दु:खोंकी जड़ सरकारोंकी रचना बतायी है। वे किसी प्रकारकी शासन-प्रणालीके पक्षपाती नहीं, चाहे वह प्रजातन्त्र ही क्यों न हो। वे सरकारोंकी रचना अस्वाभाविक और शान्तिनाशक मानते हैं। जो लोग, जान मालकी रक्षाके लिये सरकारोंका अस्तित्व आवश्यक मानते हैं, उन्हें टाल्सटायने मुंहतोड़ उत्तर दिये हैं। संसारमें जो उत्पन्न हुआ है, वह भूमिका उसी तरह अधिकारी है जिस तरह जल और वायुका है। इसी सिद्धान्तको स्वीकार करते हुए टाल्सटायने भूमिको सरकारी नहीं, बल्कि सार्वजनिक सम्पत्ति माना है। मनुष्यपर मनुष्यका शासन टाल्सटायको असह्य है और उनके मतसे परस्परमें एक दूसरेकी सहायताका सिद्धान्त सामाजिक सुव्यवस्थाकी जड़ है। टाल्सटायके विचारोंका संसारमें

मान बढ़ रहा है और स्वतन्त्र देशोंके अधिवासी भी इन विचारों-को ध्यानमें रखकर अपनी निस्सहाय अवस्थाका ज्ञान प्राप्त करने-में समर्थ हुए हैं। टालसटायके विचार रूसी भाषामें प्रकट किये गये हैं और संसारकी भिन्न भिन्न प्रधान भाषाओंमें उनका अनु-वाद प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत पुस्तकमें अंग्रेजी अनुवादसे कुछ विचार एकत्र कर दिये गये हैं। आशा है हमारे देश-वासी उनसे लाभ उठायेंगे। महात्मा गान्धीने भी टालसटायके विचारोंका प्रचार अभीष्ट माना है।

विनीत—

सम्पादक।

टाल्सटायकी संक्षिप्त जीवनी।

१८२८ ई० में रूसमें टालसटायका जन्म हुआ था। जब वे स्कूलमें पढ़ते थे, तब बहुत होशियार लड़कोंमें नहीं समझे जाते थे। कालेजमें भर्ती होनेपर वे सफलता ही न प्राप्त कर सके। विश्वविद्यालयमें छात्रकी हैसियतसे पहले तो उन्होंने पूर्वी विद्याओं-का अध्ययन आरम्भ किया, परन्तु जब सफल न हुए तो कानून पढ़ने लग गये। कानूनमें भी उन्हें सफलता प्राप्त न हुई। जीवनके प्रारम्भमें वे अपनेको किसी कार्यमें सफल न देख निराश बन चुके थे। यौवनावस्थामें वे बुरी सुहबतमें पड़कर अपना जीवन निन्द्य बना बैठे। शराब पीने और जुआ खेलनेका बुरा शौक लग जानेसे वे बराबर दुखी रहा करते थे। एक ओर ये दुर्गुण उन्हें अपनी ओर खींच रहे थे और दूसरी ओर उनका अन्तःकरण उन्हें धिक्कार रहा था। स्वयं टालसटाय भी अपने दुर्गुणपर क्रुद्ध रहते थे। एक दिन उन्होंने नङ्गे होकर अपनेको एक लोहेके डण्डेसे बांधा और इतने जोरसे कोड़े लगाये कि फूट फूटकर रोने लगे।

टालसटायका भाई सम्राट्की सेनाका अफसर था। इसलिये वे भी विश्वविद्यालयसे निकलकर सेनामें भर्ती हो गये। फिर

कया था, वे भी लड़ाईमें अपने भाइयोंको गोलियोंकी बौछारसे मारने लगे। किसानोंसे जबर्दस्ती रुपया छीनकर जुएमें हार जाया करते थे और ग्रामीण स्त्रियोंके साथ व्यभिचार करते हुए नहीं डरते थे। जुआ, ठगी, धोखाबाजी, मनुष्य-हत्या, व्यभिचार और शराबखोरीमें दस वर्ष व्यतीत हुए। १८५३ में जो क्रीमियाकी लड़ाई हुई, उसमें टाल्सटायने भी भाग लिया था। इस युद्धकी भयङ्करतामें भाग लेनेपर उन्हें आत्मज्ञान उत्पन्न हुआ और उन्हें अपने जीवनसे वास्तविक घृणा हो गयी। वे सेनाकी नौकरी छोड़कर रूसकी राजधानी सेण्टपीटर्सबर्गको लौट आये।

उस समय राजधानीमें स्वेच्छाचारी शासनसे मुक्ति पानेके लिये नवीन आन्दोलन आरम्भ हुआ, जो पश्चिमी ढङ्गका होनेके कारण टाल्सटायको पसन्द न आया और वे १८५७ में युरोपीय यात्राके लिये रवाना हुए। वे कुछ ही सप्ताह बाद निराश होकर फिर वापस चले आये। पेरिसमें फांसीका एक भयानक दृश्य उन्हें दिखाई दिया, जिसका प्रभाव उनपर बहुत ज्यादा पड़ा। वे तीन वर्षतक अत्यन्त सादा जीवन बिताकर रूसी किसानोंके जीवनका अध्ययन करने लगे। इसके बाद उन्हें किसानोंके सम्बन्धमें इतना अनुराग उत्पन्न हुआ कि उन्होंने दूसरी बार युरोपके सभी देशोंकी यात्रा इसलिये करनी चाही, जिससे कि उन देशोंके किसानोंकी असली दशा अपनी आंखोंसे देखी जा सके। एक सालके भ्रमणके बाद वे रूस लौट आये और अवैतनिक शान्ति-स्थापक नियुक्त किये गये, जिससे उन्हें

रूसकी जनताका और भी अधिक परिचय प्राप्त करनेका अवसर मिला। १८६२ में ३४ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने विवाह किया। १५ वर्षतक वे आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करते रहे। वे गृहकार्योंमें इतने मग्न हो गये कि सभी अन्य काम छोड बैठे। उनके पास जो पैतृक जायदाद थी, उसका उन्होंने बडी चतुराईसे निरीक्षण किया और दो उत्तम ग्रन्थोंकी रचना भी की, जिससे उनकी बडी ख्याति हुई और वे अच्छे लेखक माने जाने लगे। उन्होंने यूनानी और जर्मन भाषाओंका ज्ञान भी प्राप्त कर लिया।

पचास वर्षकी अवस्था होनेपर उन्हें फिर चिन्ता हुई कि जीवनका उद्देश्य क्या है। समाजमें नित्य असमानता, व्यभिचार और दुर्गुण बढ़ते देख उन्हें सुधारकी ओर ध्यान देना उचित दिखाई दिया। वे हिन्दू, मुसल्मान, जैन, बौद्ध, ईसाई धर्मग्रन्थोंका अनुशीलन करने लगे और रात दिन इसी चिन्तामें अपने दिन काटने लगे कि मनुष्यका जीवन किस तरह सुखी बनाया जाये। वे अपने जीवनको दिनपर दिन सादा बनाने लगे और बडे बडे दार्शनिकोंके विचारोंका अनुशीलन करने लगे। उन्हें किसी प्रकार जब सन्तोष न हुआ तो बडी दृढताके साथ आत्मपरीक्षामें लगे और अन्तमें उन्होंने अपना सिद्धान्त निश्चित कर लिया। धन, बल और भोगके आदर्शको त्यागकर उन्होंने निर्धनता, नम्रता, त्याग और परोपकारको अपना आदर्श बनाया। वे ईसाई मतकी बुराइयोंसे दुःखी होकर उसका सुधार करना

चाहते थे; परन्तु अनुदार पादड़ियोंने उनका विरोध किया और १६०१ में उन्हें ईसाई धर्मसे अलग कर दिया।

टाल्सटायने जिस दिनसे अपना सिद्धान्त निश्चित किया, वे सांसारिक मोहसे सर्वथा अलग हो गये। वे अपनी जायदाद्‌की जरा भी परवा नहीं करते थे और उसकी आय घटते घटते बिल्कुल ही कम रह गयी। १८८५ में वे मांस-भोजन भी त्याग चुके थे। वे शिकार, तम्बाकू तथा हर तरहकी विलासप्रियता छोड़ बैठे। किसानकी तरह सादा जीवन व्यतीत करने लगे। उनकी पोशाक, शकल-सूरत देखकर कोई नहीं कह सकता था कि वे एक साधारण किसान नहीं हैं।

१८६१ में टाल्सटायने अपनी सभी सम्पत्तिसे नाता तोड़ दिया। वे हर तरहकी सम्पत्ति हत्याके समान समझने लगे। अपनी पुस्तकोंको सार्वजनिक सम्पत्ति बना देनेका भी निश्चय उन्होंने किया। १८६१—६२में रूस-दुर्भिक्षके कारण जनता बड़ी पीड़ित हुई। टाल्सटायने प्रजाको सुख पहुंचानेका भार अपने ऊपर लेकर रात-दिन घोर परिश्रम किया। युरोप और अमेरिकामें उनके इस कार्यकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा हुई। कुछ दिनोंके परिश्रमके बाद उन्होंने यह काम अपने अनुकूल न समझकर त्याग दिया।

रूसमें जब कभी अधिकारिवर्ग जनताको किसी तरह तङ्ग करता था, टाल्सटाय सदा ही जनताका पक्षसमर्थन करते थे। सरकारने जिस समय जबर्दस्ती सैनिक-भर्तीका नियम बनाया,

बहुतसे रूसी इस नियमको अपने अन्तःकरणके विरुद्ध समझकर उसका पालन करनेको तैयार न हुए और सरकारने उन्हें दबानेका निश्चय किया। टालसटायको इन लोगोंकी रक्षा करनेके लिये जब धनकी आवश्यकता हुई, तो उन्होंने अपने ग्रन्थ-प्रकाशनका अधिकार बेचकर उनकी रक्षा की। यद्यपि वे अपना सिद्धान्त स्थिर कर चुके थे कि मेरी लिखी हुई सभी पुस्तकें सार्वजनिक सम्पत्ति हैं, परन्तु दुःखियोंका दुःख दूर करनेके लिये उन्हें अपने सिद्धान्तको तोड़ना पड़ा। उन्हें पीछेसे इसके लिये बड़ा प्रायश्चित्त भी करना पड़ा। रूसको जनता जिन अधिकारोंके लिये लालायित हो रही थी, उनके पक्षमें टाल्सटायने भी अपनी आवाज उठायी और रूसके निरंकुश सम्राट् जारके नाम एक लम्बा पत्र बड़ी निर्भीकताके साथ लिख भेजा।

१९१० के अक्टोबर मासमें समस्त संसारमें यह आश्चर्यजनक समाचार फैला कि काउण्ट टालसटाय चुपचाप घर छोड़कर चले गये। वे अपने परिवारको भी अपना पता नहीं बता गये और न किसीको यही सूचना दी कि वे कहां गये। पीछेसे उनकी लड़की और डाक्टरको पता लगा कि वे एक गांवमें बीमार पड़े हैं। समस्त परिवार वहींपर उनके पास गया और उनके साथ रहने लगा। यदि वे बीमार न पड़ते, तो वे रूसके सीमान्तमें जाकर किसानोंके बीच रहते हुए शान्तिपूर्वक अपने दिन व्यतीत करते।

वे हिन्दू गृहस्थके समान ६० वर्षको अवस्थाके उपरान्त जङ्गलोंमें जाकर जीवन व्यतीत करना अच्छा समझते थे। जिस

गांयमें जाकर वे बीमार पड़ गये थे, वहां कुछ दिन कष्ट भोगकर वे १६१० के नवम्बर मासके बीसवें दिन प्रातःकाल ६ बजे स्वर्गवासी हुए।

टाल्सटायको पश्चिमी सभ्यतासे बड़ी घृणा थी। १६०१ में एक भारतीय प्रशंसकको उन्होंने पत्र भेजकर लिखा था कि मुझे यह सुनकर हर्ष हुआ कि भारतवासी अपना उद्धार युरोपीय साधनोंसे नहीं चाहते। उन साधनोंसे सुधार सम्भव भी नहीं है। पाशविक बलके आधारपर कोई भी समाज या राष्ट्र स्थिर नहीं रह सकता और उसपर जो अवलम्बित होगा, वह भयानक है। युरोपीय राष्ट्र पशुबलपर ही अवलम्बित हैं। पशुबलका सूत्र जब चाहे टूटकर समाजको अस्त-व्यस्त कर सकता है। सामाजिक सङ्गठन हिंसापर नहीं, बल्कि प्रेम और सहानुभूतिपर स्थिर रहना चाहिये। सच्चे धर्मकी उन्नतिपर ही यह सब-कुछ निर्भर है। सच्चे धर्मका अर्थ सभी धर्मोंमें समान निष्कर्ष है, जो प्रत्येक मनुष्यमें ईश्वरका अंश विद्यमान समझता है और उस अंशको रखनेवाले मानुषीय मन्दिरका सम्मान करता है।

हिन्दू धर्म बड़ा प्राचीन है। वह आत्मामें परमात्मा स्वीकार करता है। हिन्दू धर्मका महत्व मेरी सम्मतिमें वर्णभेदने नष्ट कर दिया है। बौद्ध धर्मने उस महत्वको कायम रखा है। कबीरपन्थियोंने भी उसकी रक्षा की है; क्योंकि वे प्राणीकी आत्माकी पवित्रताका प्रधान सिद्धान्त स्वीकार किये हुए हैं। इसीसे वे किसी प्राणी और विशेषकर मनुष्यकी हिंसाका निषेध करते हैं।

जबतक भारतवासी अपने भाइयोंका वध करनेके लिये तैयार रहेंगे यानी सेनामें भर्ती होते रहेंगे, भारतमें दुर्भिक्ष बना रहेगा और भारतवासी मजूर बनकर अपना जीवन कष्टमय बनाये रहेंगे। जो शारीरिक स्वच्छता नहीं रखते, वे ही कीड़ोंका घर अपने शरीरमें बनाते हैं। भारतवासी नैतिक स्वच्छता रखकर आलसी लोगोंको अपना रक्त चूसनेका मौका न देंगे।

जनता जिन कारणोंसे धर्मके असली सिद्धान्तको नहीं समझ पाती, उन्हीं कारणोंको दूर करना प्रत्येक देशहितैषीका कर्तव्य है। धर्मपर जो पर्दा इस समय पड़ चुका है, उसे उठानेकी जरूरत है। यही उद्योग भारतवासियोंका सब प्रकारकी बुराइयोंसे उद्धार करेगा और भारतवासी अपने निर्दिष्ट उद्देश्यको प्राप्त कर सकेंगे।

टालसटायका प्रधान सिद्धान्त सत्यके लिये आग्रह करना है। वे बुराईकी जड़ बुराईसे काटनेके पक्षपाती नहीं। वे कष्ट-सहन-पर बड़ा जोर देते हैं। एक प्रसिद्ध पत्र-सम्पादकसे मुलाकात करते हुए उन्होंने कहा कि पशुबलका प्रयोग अक्षन्तव्य है, चाहे भयानकसे भयानक बुराईकी जड़ उखाड़नेमें ही क्यों न काममें लाया गया हो। पशुबलका मार्ग एक बार खुल जानेसे सब तरहकी बुराइयां प्रवेश पा सकती हैं। मनुष्य पशुबलद्वारा बुराई दूर करनेकी चेष्टा करते हैं और इस तरह अपने भाइयोंके सङ्कट बढ़ाया करते हैं। यदि वे चुपचाप अत्याचार सहें, तो अपनी सहनशक्तिसे उसका नाश कर सकते हैं। कष्ट-सहन

और मृत्युका सामना करनेसे ही मनुष्य अपने पक्षपातियोंकी संख्या बढ़ाया करता है।

उपदेशसे नहीं, मृत्युसे अनुयायियोंकी संख्या बढ़ा करती है। मनुष्य जिस समय देखते हैं कि हमारे समान ही मनुष्य चुपचाप अपनी सम्पत्तिका नाश देख रहा है, कष्टोंमें सुख पा रहा है और सिद्धान्तके लिये हंसते हंसते मृत्युको प्राप्त हो रहा है, तो वे गम्भीरतापूर्वक कहते हैं कि इस मनुष्यका सिद्धान्त निस्सार नहीं है। जबतक कोई किसी सिद्धान्तके लिये मरनेको दृढ़ता नहीं दिखाता, तबतक लोग उसको सत्यतामें विश्वास नहीं किया करते। सब तर्कोंसे बढ़कर जेलखाना और फांसी है, जो दूसरे मनुष्यको अपने पक्षमें ला सकता है। जो इन कष्टोंसे दूर रहना चाहता है, वह दूसरोंको अपने पक्षमें लानेकी आशा न रखे।

जिस समय टालसटाय चुपचाप घर छोड़कर बाहर गये थे, वे अपनी स्त्रीके नाम एक पत्र लिखकर लिफाफेमें बन्दकर छोड़ गये थे। उस पत्रका सारांश नीचे दिया जाता है:—

प्रिय सोनया,

मैं बहुत दिनोंसे यह बात देख रहा हूं कि मेरा जीवन मेरे सिद्धान्तोंके अनुकूल व्यतीत नहीं हो रहा है। यह बात असम्भव है कि मैं तुम्हें ऐसी शिक्षा दे सकूं, जिससे तुम्हारा जीवन और आदतें बदल जायें। मैं अबतक तुम्हें इसलिये अकेला भी न छोड़ सका कि मेरे वियोगसे तुम्हें कष्ट होनेके सिवा बच्चोंकी रक्षा और शिक्षाका सारा भार भी तुम्हारे ही शिरपर आ जायेगा।

छोटे छोटे बच्चोंपर मैं अपना प्रभाव भी डालना चाहता था। १६ वर्षतक मैं बराबर अपने अन्तःकरणके साथ युद्ध करता रहा। अब मेरे लिये यह असम्भव हो गया है कि मैं अपनी भीतरी इच्छाके विपरीत जीवन व्यतीत करूं। मैंने वर्षोंसे जो निश्चय कर रखा है, उसीको घर छोड़कर पूरा करना चाहता हूं। मैं वृद्धावस्थामें इस जीवनके भारको असह्य मानकर अधिक शान्तिका अभिलाषी हूं। बच्चे भी अब अवस्थामें अधिक हो गये हैं और मेरे प्रभावकी आवश्यकता नहीं रखते। तुम सब इतने सुखमें मग्न हो कि मेरी अनुपस्थितिसे विशेष कष्ट न होगा।

मैं ७० वें वर्षमें प्रवेश कर रहा हूं। प्रत्येक वृद्ध मनुष्य जीवनका अन्तिम समय ईश्वरीय सेवामें लगाना चाहता है। हिन्दू ६० वर्षकी अवस्था प्राप्त करनेपर जङ्गलोंमें चले जाते हैं। धार्मिक मनुष्यको वृद्धावस्थामें क्या हंसी-मजाक, खेल-कूद पसन्द आ सकता है? अपने अन्तःकरण और बाहरी जीवनके बीच मैं जिस युद्धका अनुभव कर रहा हूं, उसका अन्त चाहता हूं।

यदि मैं खुले मैदान घर छोड़कर जानेकी तैयारी करता, तो लोग अनुनय-विनय, तर्क-वितर्कसे मुझे वशमें करनेकी अवश्य ही चेष्टा करते। मेरा निश्चय उस समय शिथिल पड़ जाता, जिसके अनुसार काम करना मैं परम आवश्यक समझता हूं। मैं आशा करता हूं, कि यदि मेरे इस कार्यसे तुम्हें जरा भी कष्ट हो, तो तुम मुझे क्षमा प्रदान करोगी। मुझे अब प्राणप्यारी!

स्वतन्त्रता-पूर्वक विचरने दो। मुझे तलाश न करना और न मुझे धिक्कारना। मुझपर घृणा भी न करना।

यह मत समझना कि तुमसे असन्तुष्ट होकर मैं घर छोड़ रहा हूं। मैं यह बात अच्छी तरह जानता हूं कि तुम अपने विश्वासके विरुद्ध काम करनेको तैयार नहीं हो सकती और मेरे अनुसार अनुभव नहीं कर सकती। मैं तुम्हारे अवगुणकी चर्चा नहीं कर रहा हूं। गृहस्थाश्रमके ३५ वर्ष जिस आनन्दसे व्यतीत हुए हैं, उनका मैं प्रेम और कृतज्ञतापूर्वक स्मरण कर रहा हूं।

इन ३५ वर्षोंमें भी इस कालका आधा भाग तो और भी अधिक स्मरणीय है जब कि तुमने पूर्ण स्वार्थत्यागसे गृहस्थीका भार संभाला। तुम जो कुछ दे सकती थी, वह मुझे और संसारको दिया गया। तुमने एक माताकी हैसियतसे जो प्रेम और त्याग दिखाया, उसकी मैं प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता।

गत १५ वर्षोंमें हम दोनोंके विचार एक दूसरेसे भिन्न हो गये। इसके लिये मेरा ही दोष है, क्योंकि मेरे ही जीवनमें परिवर्तन हुआ। यह परिवर्तन स्वयं मेरे लिये या संसारके लिये नहीं, बल्कि इसलिये हुआ कि मेरा वश न चला। तुमने मेरा अनुकरण न किया, इसके लिये तुम्हारा कोई अपराध नहीं। मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूं और तुमने जो कुछ मुझे दिया, उसका मैं सदा ही प्रेमपूर्वक स्मरण रखूंगा। प्रिय सोनया, अन्तिम नमस्कार।

तुम्हारा प्रेमपात्र—

लियो टाल्सटाय।

श्रीहरिः ।

गुलामीसे उद्धार ।

पहला अध्याय ।

भूमि और मजूर ।

(१)

"मैंने देखा कि समस्त मनुष्य जाति गाय, बैल, बछड़ोंके झुण्डकी तरह एक बाड़ेमें बन्द है, जिसकी चारों ओर तार लगे हुए हैं । इस घेरेके बाहर बहुत अच्छी हरीहरी घास खानेके लिये मौजूद है । घेरेके भीतर पशुओंके पेट भरनेके लिये काफी घास नहीं है । इसीसे पशु एक दूसरेको सींगोंसे बहुत बुरी तरह मार रहे हैं और जो थोड़ीसी घास है, उसे पानेके लिये आपसमें एक दूसरेको कुचल रहे हैं । पशुओंका स्वामी बड़ा भला आदमी है । मैं उसे बुलाकर पशुशालामें लाया और उसे पशुओंकी दुर्दशा दिखायी । वह इसके लिये बड़ा दुःखी हुआ और मैंने उससे प्रश्न किया कि आप इनकी दशा सुधारनेका क्या प्रबन्ध कर सकते हैं । स्वामीने दया दिखाकर पशुओंके सुखके लिये घेरेके भीतर प्रबन्ध कर दिया कि सबको गर्मीमें हवा मिले और वर्षा तथा जाड़ेमें पानी और

सर्दीसे रक्षा हो। अपने अस्तित्वकी रक्षाके लिये घास पानेकी चेष्टा करते हुए पशु एक दूसरेको सींगोंकी चोटोंसे घायल न करें, इसके लिये उसने सींगोंके सिरोंपर लोहेके पत्ते जड़वा दिये। घेरेके एक हिस्सेमें उसने बूढ़े पशुओंको रखनेकी व्यवस्था कर दी, जिससे अपने अस्तित्वके लिये उन्हें लड़ना न पड़े और वे आसानीसे घास पा जायें। बछड़े भी कष्ट पा रहे थे, मर रहे थे और वे अच्छे पशु भी नहीं बन रहे थे जिससे भविष्यमें स्वामीके लिये लाभदायक हों, इसलिये व्यवस्था की गयी कि उन्हें हर रोज सवेरे थोड़ासा दूध दिया जाये। इस व्यवस्थासे यद्यपि किसीका पेट न भरा, परन्तु इतना दूध सबको मिला कि वह प्राण न खो दे। वास्तवमें स्वामीने सबके सुखकी व्यवस्थाके लिये जितना सुधार हो सकता था, किया। मैंने उससे कहा कि आपने इतना कष्ट झेलनेकी अपेक्षा एक साधारण काम क्यों न किया। इस बाड़ेको तोड़कर पशुओंको बाहर निकाल देते। स्वामीने उत्तर दिया कि यदि मैं ऐसा करता, तो फिर दूध कहांसे पाता।"

(२)
श्रम विभाग।

मनुष्य चाहे जहां चाहे जिस ढङ्गसे रहे, वह रहनेके लिये घर अपने आप ही नहीं पा जाता। उसे जलानेके लिये लकड़ी अपने आप ही नहीं मिल जाती, पानी भी अपने आप नहीं पहुंच जाता और न खानेके लिये आसमानसे रोटी ही गिरती है। उसे भोजन,

वस्त्र, पैरोंकी रक्षाके लिये जूते इत्यादि अपने पुरखोंसे नहीं मिले हैं। हर रोज सैकड़ों हजारों आदमी इसी समय घोर परिश्रम करते हुए उसके लिये यह सामान तैयार कर रहे हैं। ये आदमी सामान तैयार करते हुए भूखसे व्याकुल हो रहे हैं, बेहोश हो रहे हैं, भोजन, वस्त्र और निवासस्थानसे स्वयं वञ्चित हो रहे हैं और उनके बाल-बच्चे भी वञ्चित हैं। वे अपनी प्यारी सन्तान समेत कष्ट पाते हुए अकाल मृत्युको प्राप्त हो रहे हैं।

संसारमें सभी मनुष्य कुछ न कुछ आवश्यकता अवश्य ही रखते हैं। कुछ लोग स्वयं भूखों मरकर दूसरोंकी आवश्यकताएं पूर्ण कर रहे हैं। संसारी आदमी उस जहाजके मनुष्योंके समान हैं, जिन्हें जहाजमें पानी भरा देख इस बातका ध्यान रखना है, कि जितनी खाद्यसामग्री है, उससे काम चल जाये। हरएकको जो जहाजपर सवार है, इस बातकी चिन्ता है कि खाद्यसामग्री इस तरह काममें लायी जाये कि अधिकसे अधिक समयतक सबका ही काम चल सके। जो जरूरतसे ज्यादा खा लेता है, वह तमाम जहाजके यात्रियोंको सङ्कटमें डालना चाहता है। परमात्माकी सृष्टिमें सबको अपने परिश्रमद्वारा अपनी आवश्यकता पूर्ण करनी है। जो आदमी बड़ा बनकर किसी दूसरेसे ऐसा काम लेता है जो सबके सुखको नहीं, उसीके सुखको बढ़ानेवाला है और जो स्वयं आलसी रहकर अधिक सुखकी इच्छा करता है, वह जहाजवालोंकी तरह निश्चय ही संसारके मनुष्योंको सङ्कटमें डाल रहा है। क्या यह आश्चर्यकी

बात नहीं है कि अधिकांश पढ़े-लिखे आदमी अपने लिये दूसरों-को उस परिश्रमसे वञ्चित कर रहे हैं, जो उनके जीवनके लिये ही आवश्यक है? क्या दूसरोंके लिये कष्टदायी यह आलसी जीवन स्वाभाविक और उचित है, जो दूसरोंके परिश्रमपर निर्भर कर रहा है?

यदि कोई आदमी जूते बनाता है, तो क्या वह यह आशा अवश्य कर सकता है कि उसे दूसरे खानेके लिये भरपेट भोजन देनेके लिये बाध्य हैं? जूतोंकी दूसरोंको जरूरत भी तो होनी चाहिये। यदि किसीको उनकी आवश्यकता नहीं, तो उन्हें लगातार तैयार करते रहनेवाला भरपेट भोजन पानेका किस तरह अधिकारी है। जो लोग शासन, धर्म, कला और विज्ञान विभागोंमें काम कर रहे हैं, वे ऐसा काम करते हैं जिसकी जनताको आवश्यकता नहीं। वे बढ़िया चीजें भी तैयारकर सामने नहीं रखते। इसपर भी वे यदि आशा करें कि उन्हें बढ़िया भोजन और वस्त्र केवल इसी सिद्धान्तपर मिलना चाहिये कि संसारमें सबका काम बंटा हुआ है, तो उनकी यह मांग दुस्साहसपूर्ण नहीं तो क्या है।

संसारमें परिश्रमका विभाग सर्वत्र और सब कालोंमें रहा। कोई पढ़ाता है, कोई लड़ता है, कोई खेती करता है और कोई अन्य काम करता है। कौन किस कामको करे, इसका निर्णय मनुष्य अपनी योग्यतानुसार आप ही कर लेता है। वह वही काम करने लग जाता है, जिसकी मानव-समाजको आवश्यकता

है यानी जिसे करता हुआ वह दूसरोंसे बदलेमें अपने लाभके लिये दूसरा काम करा सकता है। किसीको यह अधिकार कभी नहीं है कि वह अपनी इच्छासे ऐसा काम करने लगे, जिसकी दूसरोंको इच्छा भी नहीं है और वह अपने इस कामके बदलेमें दूसरोंसे काम लेनेकी जबर्दस्ती आशा रखे। यह तो "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाला सिद्धान्त हुआ न कि उस सिद्धान्तका पालन हुआ जो मनुष्यको पारस्परिक सहायताके बन्धनमें बांधता है। किसीको क्या अधिकार है कि वह अपनी इच्छासे यह बात तय कर ले कि मैं तीस वर्ष तक आरामतलबीके साथ अध्यन करूंगा और मेरे सुख तथा व्ययकी व्यवस्थाके लिये दूसरोंको व्यवस्था करनी होगी, क्योंकि पढ़-लिखकर मैं ऐसा काम करूंगा जो सबको लाभदायक होगा—चाहे उस कामको किसीने करनेको भले ही न कहा हो। ३० वर्ष सुखपूर्वक अध्ययनमें बिताकर फिर भी दूसरोंसे बली या विशेष प्रभावशाली होनेके कारण जो दूसरोंके लिये कोई अच्छा काम कर देनेकी आशा दिलाकर दूसरोंके परिश्रमसे लाभ उठा रहा है, वह क्या इस सिद्धान्तका पालन कर रहा है कि संसारमें सबके लिये अलग अलग काम बंटा हुआ है? यह तो दूसरोंके परिश्रमसे जबर्दस्ती लाभ उठाना है और सच्चा श्रमविभाग नहीं। पुराने जमानेमें जिस तरह कुछ लोगोंने धर्मके नामपर ईश्वरीय अधिकारका ढोंग रचा था या दार्शनिकोंने मानुषिक जीवनकी अत्याज्य अवस्थाकी धूम मचायी थी, उसी तरह श्रमविभागकी

झूठी धूम आजकल भी है—जिस धूमसे चालाक आदमी स्वयं कुछ भी परिश्रम न कर दूसरोंसे अपने लाभ और सुखके लिये परिश्रम कराना चाहते हैं।

मनुष्योंमें यह बात सदा देखी गयी कि सभी काम एक ही आदमी कभी नहीं करता रहा। सबके हितके लिये सभी अलग अलग काम करते चले आ रहे हैं और भविष्यमें भी करते रहेंगे, परन्तु प्रश्न यह है कि काम किस तरह बांटे जायें जिससे सबको पूरा लाभ पहुंचे। यह न हो कि एक दल थोड़ा काम करता हुआ अधिक सुख या लाभ प्राप्त कर ले और दूसरा दल काम करनेपर भी सदा नङ्गा बना रहे, भूखों मरता रहे और अज्ञानके अन्धकारमें ठोकरें खाया करे।

कुछ लोग तो मानसिक और आत्मिक परिश्रमके ठेकेदार बने हुए हैं और कुछ शारीरिक परिश्रम करते हैं। एकके कामसे दूसरा किस तरह लाभ उठाये, यही प्रश्न है। मानसिक काम करनेवाले शारीरिक श्रम करनेवालोंसे कहा करते हैं कि तुम सब मिलकर खानेको अन्न, पहननेको वस्त्र बनाकर दो और हमारे सुखके लिये दास बनकर काम करो, तब हम तुम्हें अपने मानसिक श्रमका मजेदार फल चखनेको देंगे। एक दल दूसरे दलकी आवश्यकता पूरी करता रहे इसमें तो कोई हानि नहीं, परन्तु एक अपनेको बड़ा और दूसरेको छोटा कैसे समझ सकता है। दूसरेके शारीरिक श्रमसे पहले लाभ उठानेका किसीको इस प्रतिज्ञापर क्या अधिकार है कि उस परिश्रमका बदला पीछे-

से मानसिक परिश्रमद्वारा चुकाया जायेगा। शारीरिक परिश्रम करनेवाला पहले काम कर दे और काम कर देनेपर भी इस बातका पूरा निश्चय नहीं, कि बदलेमें उसे मानसिक काम करनेवालोंसे लाभ पहुंचेगा या नहीं। मनुष्यके लिये उत्तम जीवन-निर्वाहके वास्ते मानसिक और आत्मिक भोजनकी आवश्यकता हुआ करती है यानी जो भरपेट भोजन कर लेता है, उसे इस बातकी आवश्यकता रहती है कि वह अपने मनका नियन्त्रण भली भांति कर सके, जिससे पेट भर लेनेपर भी मनकी कमजोरीसे उसे कोई कष्ट न हो या आत्माकी कमजोरीसे वह कोई पाप न कर बैठे। शारीरिक परिश्रम करनेवालेको मानसिक और आत्मासम्बन्धी उन्नतिके लिये दूसरोंकी सहायताकी आवश्यकता है; परन्तु यह कौनसा न्याय है कि जो शारीरिक श्रम करता है, वह पहले मिहनत कर दे। उस मिहनतसे लाभ उठानेवाले चाहें तो उसका उपकार करें और चाहें तो उससे काम लेते हुए उसे सदा आशामें ही डाले रहें।

मानसिक परिश्रम करनेवाले यह दलील पेश कर सकते हैं कि पहले बढ़िया भोजन देकर, बढ़िया वस्त्र पहनाकर हमें सुख पहुचाओ, तब हमारे दिमागसे ऐसी कोई बात निकल सकेगी जो तुम्हें लाभ पहुचा सके। शारीरिक परिश्रम करनेवाला भी क्या इसी तरह यह दलील पेश नहीं कर सकता कि पहले मुझे दिमागी लाभ पहुंचाओ जिससे मैं अच्छे ढङ्गसे काम कर सकूं। मैं पीछेसे अपने शारीरिक श्रमद्वारा आपको लाभ पहुंचा दूंगा।

मैं अपने जीवनको पहले बढ़िया बनाकर आपके लिये काम कर सकूंगा, इसलिये पहले मेरी मदद करो।

मेरे पास इस बातके लिये समय नहीं कि मैं विचार कर सकूं कि जीवनमें किन नियमोंका पालन करना आवश्यक है, जो नियम न्यायकी रक्षा कर सकते हैं—मुझे इस बातका ज्ञान दो। मेरे पास समय नहीं कि मैं अपने अस्त्रोंमें विज्ञानद्वारा कोई नया सुधार कर सकूं या अपने परिश्रमको सरल बना सकूं तथा अपने निवास-स्थानको स्वास्थ्यप्रद रखूं। मेरे पास कविता तैयार करनेके लिये भी समय नहीं, जो मेरे भावोंको जागृत-कर मेरे जीवनको आनन्दमय बनाये।

आप कहते हैं कि यदि मजूर हमारा काम करना छोड़ देंगे, तो हम महत्वपूर्ण काम न कर सकेंगे जो समाजके लिये आवश्यक है। मजूर भी तो इसी तरह कह सकता है कि यदि मुझे मानसिक या आत्मिक ज्ञान न दिया गया, तो मैं खेत जोतने, मैला ढोने या मकान साफ करनेका जरूरी काम न कर सकूंगा। अबतक हम लोगोंको जो आत्मिक भोजन मिला है, उससे हमारा कोई लाभ नहीं हुआ और न हम यह समझ सके कि वह किस काम आ सकेगा। जबतक हमें अपने अनुकूल आत्मिक भोजन न मिलेगा, हम आपका पेट भरनेके लिये अन्न पैदा नहीं कर सकते।

यदि मजूर इस प्रकार तर्क करने लगें, तो यह हंसीकी बात नहीं—न्यायकी ही बात होगी। मानसिक काम करनेवालोंकी

अपेक्षा शारीरिक काम करनेवालोंका कथन कहीं अधिक ठीक होगा, क्योंकि मानसिक कामसे शारीरिक काम कहीं अधिक आवश्यक और महत्वका है। मानसिक भोजन तो बिना किसी रुकावटके हरएक आदमीको दिया जा सकता है, क्योंकि देनेसे उसकी वृद्धि होती है, परन्तु शरीर पुष्ट करनेवाला अन्न देनेमें बड़ी बाधा है, क्योंकि जो पैदा करता है उसे ही पहले उसकी आवश्यकता है।

यदि हमारे लिये परिश्रम करनेवाले मजूर अपनी स्वाभाविक मांगें प्रकट करने लगें, तो हम क्या उत्तर दे सकते हैं। हम उन मांगोंको किस तरह पूरा कर सकते हैं। स्वार्थमें मग्न होकर हम तो अब यह भी नहीं जानते कि मजूरोंकी क्या आवश्यकताएं हैं। हम श्रमजीवियोंके रहन सहनका ढङ्ग, विचारोंका ढङ्ग और उनकी भाषा भी भूल गये। हम स्वार्थमें यहांतक अन्धे बन गये कि हमें इस बातका भी पता न रहा कि हमने किस उद्देश्यसे अपना कार्य आरम्भ किया था। जिन लोगोंकी सेवा करनेमें हमें अपना जीवन बिताना था उन्हें तो हम अपरिचित मान बैठे और अब उनकी सेवा करनेमें नहीं, बल्कि उनके सम्बन्धमें जानकारी पैदा करनेके लिये अपना जीवन व्यतीत करते हैं। अपने आराम और आनन्दके लिये हम उनके प्रतिनिधि बन जाते हैं। हम यह बात बिल्कुल ही भूल गये कि उनका अध्ययन नहीं, उनकी सेवा हमारा धर्म था।

समय आ गया है कि हम होशमें आयें। अपनी परीक्ष अच्छी तरह करें। हम उन पतित मनुष्योंमें हैं, जिनके हाथों स्वर्गकी कुञ्जी हो और जो स्वयं दरवाजा खोलकर भीतर न जाते हों और दूसरोंको भी भीतर घुसनेसे रोक रहे हों। हम अपने भाइयोंका रक्त चूसकर अपनेको धर्मात्मा, शिक्षित और दयालु माने बैठे हैं।

(२)

श्रमजीवियोंके नाम।

सत्यको पहचानो और सत्य तुम्हें स्वतन्त्र बनायेगा।

मुझे अधिक कालतक अब जीवित नहीं रहना है। मृत्युके पहले मैं श्रमजीवियोंको उनकी पीड़ित अवस्थाका ज्ञान कराना चाहता हूं। मैं उन उपायोंका भी जिक्र करना चाहता हूं जो श्रमजीवियोंको स्वतन्त्र बना सकते हैं। मैंने इस सम्बन्धमें बहुत विचार किया है, इसलिये मेरे विचार श्रमजीवियोंके लिये लाभदायक हो सकते हैं। यद्यपि मैंने रूसी श्रमजीवियोंके बीच रहकर उनकी अवस्थाका ज्ञान प्राप्त किया है, परन्तु मेरे विचार अन्य देशोंके श्रमजीवियोंके लिये भी लाभदायक हो सकते हैं।

जिसके आंखें और दिल है, वह यह बात अच्छी तरह देख सकता है कि श्रमजीवी तमाम जीवन अपनी आवश्यकताएं पूर्ण

करनेकी चेष्टामें ही व्यतीत करते हैं; परन्तु उनकी साधारण आवश्यकताए भी कठोर परिश्रम करनेपर भी पूर्ण नहीं होतीं। परिश्रम वे इतना करते हैं, जो उनके जीवनके लिये कहीं अधिक है। जहां श्रमजीवियोंकी यह दुर्दशा है, वहा कुछ लोग ऐसे हैं जो बिल्कुल ही काम नहीं करते। श्रमजीवी जो कुछ पैदा करते हैं, उससे लाभ उठाते हैं। श्रमजीवी परिश्रम करनेपर भी इन आलसी आदमियोंके गुलाम हैं।

क्या करना चाहिये, जिससे इस असह्य अवस्थाका अन्त हो।

पहला उपाय यही दिखाई देता है कि जो दूसरेके परिश्रमसे अनुचित लाभ उठानेवाले हैं, वे जबर्दस्ती उस परिश्रमसे वञ्चित कर दिये जायें। रोममें प्राचीन कालमें गुलामोंने यही उपाय काममें लाया था। जर्मनी और फ्रान्सके किसान भी इसी उपायको काममें लानेके लिये वाध्य हुए थे। रूसके श्रमजीवी अव भी कभी कभी इसी उपायको काममें लाते हैं।

यह उपाय स्वाभाविक रूपसे सबसे पहले सामने आता है, परन्तु इससे कभी उद्देश्य-सिद्धि नहीं हो सकती और श्रमजीवियोंकी दशा सुधरनेकी अपेक्षा और भी खराब होती है। प्राचीन कालमें सफलताकी कुछ आशा भी रहती थी, जब कि विज्ञानके अभावमें सरकारोंकी शक्ति उतनी नहीं थी, जितनी आज रेल, तार, पुलिस और सेनाओंके कारण दिखाई देता है। अब तो दङ्गा करनेवाले तुरन्त ही गोलीसे उडा दिये जाते हैं और काम न करनेवाले काम करनेवालोंपर अपनी शक्ति और भी अधिक जमा लेते हैं।

हिंसासे काम लेनेवाले श्रमजीवी हिंसाको और भी अधिक बढ़ाकर अपनी अवस्था विशेष दुःखदायी बनाते हैं। रस्सेसे बंधा हुआ आदमी जितना ही अधिक जोर लगायेगा, उतनी ही अधिक मजबूत उस रस्सेकी गांठ होती जायेगी। पशुबलसे जो अधिकार छीने जा चुके हैं, वे पशुबलको काममें लानेसे न मिलेंगे।

पशुबलसे श्रमजीवियोंकी अवस्थामें सुधार नहीं होता, यह बात प्रायः सभी मानने लगे हैं। अब एक नया सिद्धान्त सामने रखा गया है। श्रमजीवियोंकी भलाई चाहनेवाले इस सिद्धान्त-पर बड़ा जोर दे रहे हैं। ये लोग वास्तवमें भलाई चाहते हैं या नहीं, इसका कोई निश्चय नहीं हुआ; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि भलाई करनेकी दुहाई दी जा रही है। यह नया सिद्धान्त यह है कि श्रमजीवी सभा-समितियोंका सङ्गठन करें, जुलूस निकालें और देशके शासनमें भाग बटानेके लिये अपने प्रतिनिधि भेजें। इस तरह धीरे धीरे वे अपनी शक्ति बढ़ाते चले जायें। यहांतक कि एक दिन आयेगा कि श्रमजीवी सभी भूमि और कल-कार-खानोंपर अपना ही अधिकार कर लेंगे। अपना अधिकार जमाकर वे सुखी बन जायेंगे। यह सिद्धान्त यद्यपि परस्पर-विरोधी बातोंसे भरा हुआ है, असम्भव कल्पनाएं शामिल किये हुए है और मूर्खतापूर्ण भी है, परन्तु उसका प्रचार चारों ओर बढ़ रहा है।

इस सिद्धान्तका प्रचार केवल उन्हीं देशोंमें नहीं है जहांपर अधिकांश श्रमजीवी कई पीढ़ियोंसे खेतीका काम छोड़ भूमिसे

वञ्चित हो चुके हैं, बल्कि उन देशोंमें भी है जहांपर श्रमजीवी खेती करते हुए जमीन अपने पास रखते हैं।

यह सिद्धान्त 'साम्यवाद' के नामसे प्रख्यात है जिसे वे श्रमजीवी स्वीकार कर रहे हैं, जो नगरोंके चमकदार जीवनसे आकर्षित होकर खेती छोडकर कारखानोंमें काम करने लग गये हैं। वे नगरोंमें आकर इस सिद्धान्तके माननेवाले बन गये हैं कि मनुष्यकी आवश्यकताएं जितनी ही अधिक होंगी, वह उतना ही अधिक सभ्य बनेगा। श्रमजीवी 'साम्यवाद' के सिद्धान्तको थोडा बहुत समझकर बडे उत्साहके साथ अपने साथियोंमें उसका प्रचार करते हैं। वे अपनी बढी हुई आवश्यकताओंके कारण अपनेको गावोंके सीधे सादे मिहनती किसानसे बढकर समझते हैं। गावोंके किसान साम्यवादको माननेके लिये तैयार नहीं। वे उसे अपने अनुकूल नहीं मानते और यह बात अच्छी तरह समझते हैं कि यह सिद्धान्त उनका उद्धार न कर सकेगा। वे सभा-समितियों, जुलूसों और शासनके लिये अपने प्रतिनिधियोंके चुनावको विशेष महत्त्व नहीं देते।

गावोंके श्रमजीवियोंके लिये न तो सभा-समितिया ही उपकार करनेवाली हैं और न उन्हें अपने कामके घण्टे कम करने या मजूरी बढानेके लिये आन्दोलन करनेकी जरूरत है। वे एक ही चीज जरूरी समझते हैं, जो जमीन है। उनके पास काफी जमीन नहीं है जिससे वे अपने परिवारका निर्वाह कर

सकें। जिस जमीनकी उन्हें इतनी बड़ी जरूरत है, उसका जिक्र भी साम्यवादियोंके सिद्धान्तमें नहीं है।

विद्वान् साम्यवादियोंकी राय है कि लड़ाई-झगड़ेकी जड़ खानें, कारखाने और इसके बाद जमीन है। उनके सिद्धान्तानुसार श्रमजीवियोंको जमीन पानेके लिये पहले पैसेवालोंसे लड़कर कारखानोंपर अधिकार जमा लेना होगा। जब कारखानोंपर अधिकार हो जायेगा, तो जमीन भी मिल जायेगी। मनुष्योंको जमीनकी जरूरत है, परन्तु उनसे कहा जाता है कि जमीन छोड़कर पहले कारखानोंको छीनो, जिनकी उन्हें जरूरत नहीं है और इसके बाद वे जमीन भी पा जायेंगे। जिस चीजकी आवश्यकता है, उसे त्यागकर पहले वह वस्तु प्राप्त की जाये जिसकी आवश्यकता नहीं है। इसके बाद आवश्यक वस्तुकी प्राप्ति होगी—यह पेचीदा ढङ्ग उस सूदखोरकी याद दिलाता है, जो एक हजार रुपया केवल इस शर्तपर देनेके लिये तैयार होता है कि पहले उससे चार हजार रुपयेका साबुन, रेशम आदि लिया जाये, तो वह उस अनावश्यक सामग्रीके साथ एक हजार नकद रुपया भी दे देगा। यह कैसा विचित्र सिद्धान्त है!

साम्यवादी जमीन और कारखानोंके बीच कुछ भी भेद न मानकर श्रमजीवियोंसे जमीन छोड़नेके लिये कहते हैं, जिस ज़मीनके लिये वे भूखे बैठे हैं और उनसे उन कारखानोंको लेनेके लिये कहते हैं, जो तोप, बन्दूक, शीशे, साबुन, इत्र तथा विलासके अन्यान्य सामान तैयार करते हैं। जिस समय श्रमजीवी इन

सब चीजोंको बनाना सीख लेंगे और जमीन जोतना भूल जायेंगे, उस समय वे जमीन लेकर क्या लाभ उठायेंगे ?

मनुष्यका स्वाधीन और आनन्दमय जीवन उसी समय सम्भव है, जब कि वह खेती करता हुआ जमीनपर अपनी आवश्यकतापूर्तिके लिये निर्भर हो। यह बात सभी आदमी जानते हैं। यही कारण है कि वे हमेशा जमीन पानेकी चेष्टा करते रहे हैं और भविष्यमें भी करते रहेंगे, चाहे उन्हें कृषि-जीवनके समान और कोई धन्धा भले ही सामने दिखाई दे।

साम्यवादियोंका कथन है कि मनुष्यको सुखी जीवनके लिये वृक्षों और प्रकृतिके सौन्दर्यके बीच रहनेकी जरूरत नहीं है। उसे इन स्थानोंमें रहना चाहिये जहांपर कारखाने अधिक हों, जहांकी वायु भी शुद्ध न हो और जहांपर उसकी आवश्यकताएं प्रति दिन अधिक होती रहें। मनुष्य इन बढ़ी हुई आवश्यकताओंको कारखानोंमें लगातार काम करता हुआ ही पूर्ण कर सकता है। कारखानोंमें काम करनेवाले यही बड़े महत्त्वका काम समझते हैं कि कारखानोंके स्वामियोंसे लड़कर कुछ अधिक मजूरी पायी जाये और कम घण्टे काम किया जाये। वास्तवमें उनका सुख इस उद्योगसे कभी नहीं बढ़ सकता। उन्हें ऐसा उपाय सोचना चाहिये, जिससे वे अपनी खोयी हुई जमीन पाकर फिर खेती करने लगें। साम्यवादी यह बात भी कहा करते हैं कि मान लिया जाये कि कृषि-जीवन नगरके जीवनसे श्रमजीवीके लिये लाभदायक है, तो भी नगरोंमें श्रमजीवियोंकी संख्या इतनी बढ़

गयी है कि अब वे गांवोंको नहीं लौट सकते। इसके साथ ही कारखानोंमें तैयार किया हुआ सामान राष्ट्रीय धन है जो मजूरोंकी कमीसे घट जायेगा। कारखाने बचे हुए श्रमजीवियोंका भी पालन न कर सकेंगे। यदि सभी श्रमजीवी गांवोंको लौटना चाहेंगे, तो उनके लिये जमीन काफी भी न होगी।

कारखानोंसे श्रमजीवियोंके चले जानेपर राष्ट्रीय धन घट जायेगा यह दलील ठीक नहीं, क्योंकि जो लोग जमीन जोतें-बोयेंगे, वे कारखानोंमें बिल्कुल ही काम न कर सकेंगे—ऐसी सम्भावना ही क्यों की जाती है। वे अपने घरोंमें बहुतसा सामान तैयार कर सकेंगे। यदि उनके चले जानेसे हानिकारक विलास-सामग्री घट जाये या जरूरी चीजें बहुत ज्यादा तैयार न हों, तो भी आर्थिक दृष्टिसे राष्ट्रकी हानि नहीं; क्योंकि खाद्यपदार्थ अधिक उत्पन्न होंगे तथा पशुपालन होनेसे राष्ट्रकी सम्पत्ति दूसरे ढङ्गसे बढ़ने लग जायेगी।

सब श्रमजीवियोंको काफी जमीन न मिल सकेगी यह दलील भी ठीक नहीं, क्योंकि रूस आदि देशोंमें जरूरतसे ज्यादा जमीन है। इङ्गलैण्ड, बेलजियम आदि देशोंमें कम जमीन होनेपर भी वहांके श्रमजीवियोंके लिये काफी हो सकती है यदि बड़े बड़े जमींदारोंसे जमीन ले ली जाये और विज्ञानकी सहायतासे जमीन अधिक उपजाऊ बनायी जाये, जिससे थोड़ीसी जमीनमें ही सबका काम चल जाये। पूरा ध्यान देनेसे जमीनकी उत्पादनशक्ति बहुत कुछ बढ़ायी जा सकती है। यदि किसानोंको यह विश्वास

हो जाये कि उन्हें जो जमीन मिली है वह उनसे छीनी न जायेगी, तो वे उसके लिये विशेष परिश्रम करने लग जायेंगे। वे जो रुपया जमीनका लगान चुकानेके लिये जमींदारोंको देते हैं, उससे जमीन उपजाऊ बना सकेंगे। जमींदार यह समझकर जमीनको कभी अच्छी बनाते ही नहीं कि हमें तो हर हालतमें उसका लगान मिल ही जायेगा।

यदि सबको काफी जमीन न मिले, तो इसका यह भी तो अर्थ नहीं है कि वह कुछ लोगोंको न दी जाये और व्यर्थ ही जमींदारोंके पास पडी रहे। इसका तो यही अर्थ हुआ कि एक आदमीके पास एक खाली मकान पडा है और वर्षा या तूफानसे घबराये हुए मनुष्योंका एक बडा दल मकानके भीतर घुसनेकी इच्छा रखता है। मकानका स्वामी सबको बाहर रखता है, क्योंकि वह मकानमें सबके लिये काफी जगह नहीं समझता। यदि वह सबको घुसनेकी आज्ञा दे दे, तो लोग किसी तरह प्रबन्धकर उसमें आश्रय पा ही जायेंगे और यदि कुछ लोग ज्यादा भी हुए, तो वे बाहर निकल पडेंगे। कुछको तो आश्रय मिल ही जायेगा। मकान-मालिकको कह देना चाहिये कि मकान खुला है। यदि सब जगह न पायें, तो क्या थोडे आदमियोंको आश्रय न देना चाहिये ?

जमीनके सम्बन्धमें भी यही करना होगा। जो श्रमजीवी जमीन चाहें, उन्हें दी जाये। इसके बाद देखा जायेगा कि वह उनके लिये काफी है या नहीं।

प्रतिनिधि शासन या निरंकुश शासन किसीसे भी जमीनके छुटकारेकी आशा न करनी चाहिये। जिन लोगोंसे छुटकारेकी आशा की जाती है, वे स्वयं भू-सम्पत्ति रखते हैं और यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि जमीन अपने पास रखनेसे ही दूसरोंके परिश्रमसे लाभ उठाना सम्भव है। श्रमजीवियोंके हितकी चिन्ता सभी प्रकट करेंगे, परन्तु उन्हें कोई वह चीज देनेको तैयार न होगा जिसकी उन्हें सबसे अधिक आवश्यकता है। वे जमीन न पायेंगे।

श्रमजीवी पीड़ित अवस्थासे छुटकारा पानेके लिये फिर क्या करें यही प्रश्न है—

पहले तो यही दिखाई देगा कि छुटकारा सम्भव नहीं है और श्रमजीवियोंके बन्धन इतने दृढ़ हैं कि वे टूट नहीं सकते। यह ऊपरसे दिखाई देनेवाली बात है। श्रमजीवियोंको केवल अच्छी तरह अपनी अवस्थापर विचार करना है। फिर उन्हें पता लगेगा कि उद्धारके लिये न तो दङ्गा-फसाद, न साम्यवाद और न सरकारकी कृपाकी ही आवश्यकता है। उनके पास ही उद्धारका ऐसा उत्तम साधन है जिसे कोई विफल बना ही नहीं सकता। जो साधन सदासे उनके पास रहा है, अब भी है और रहेगा। श्रमजीवियोंके सभी कष्टोंकी जड़ यही है कि जमींदारोंके पास जमीन है और श्रमजीवी उसे पाते नहीं। जमींदार किन कारणोंसे जमीन अपने अधिकारमें किये हुए हैं?

पहली बात तो यह है कि यदि श्रमजीवी उनसे जमीन छीनना चाहेंगे, तो उनके विरुद्ध सेना रवाना की जायेगी जो उन्हें मार-

पीटकर भगा देंगी और उन्हें जानसे भी मार डालेगी। इस तरह जमीनपर अधिकार न हो सकेगा। श्रमजीवियो! विचारो तो सही कि ये सेनाएं किन लोगोंसे बनी हैं? क्या उनमें बड़े बड़े जमींदार सैनिक बन रहे हैं या तुम्हारे ही भाई-बन्धु हैं? यह तुम्हारे ही कारणसे है कि जमींदार जमीनपर अधिकार किये हुए हैं, क्योंकि तुम सेनामें भर्ती होते हो और सेनापतियोंकी आज्ञा मानकर गोलियां चलाते हो।

दूसरा कारण यह है कि तुम ही तो जमींदारोंसे जमीन लेकर उसके लिये लगान चुकाते हो। जमींदार लगानके लोभसे जमीन नहीं छोड़ना चाहते जो वास्तवमें तुम्हारी ही है। यदि श्रमजीवियोंके बीच यह दृढ़ निश्चय हो जाये कि न तो जमींदारोंसे लगान चुकानेके लिये जमीन ली जायेगी और न उनकी जमीनपर परिश्रम ही किया जायेगा, तो जमींदारोंके लिये सारी जमीन बोझा बन जाये। वे अपनी जमीनको सबकी सम्पत्ति बना देंगे। जमींदार न तो मेशीनोंसे काम निकाल सकेंगे और न सब जमीन जङ्गल बढ़ाने या पशु चरानेमें ही लगा सकेंगे। उन्हें धीरे-धीरे जमीनका अधिकार छोड़ देना पड़ेगा।

इस तरह श्रमजीवी अच्छी तरह समझ लें कि उद्धारका एक रास्ता जमीनकी प्राप्ति है, जो जमीन सरकारों या जमींदारोंके हाथमें है। यह जमीन यदि सबकी बनानी है, तो कोई श्रमजीवी सिपाही न बने, क्योंकि सिपाही श्रमजीवियोंको जमीनपर अधिकार नहीं करने देते; न कोई श्रमजीवी जमींदारकी जमीनपर

किसी तरहका काम करे और न जमींदारसे कोई जमीन लगानपर ही ली जाये।

कुछ लोग आपत्ति करेंगे कि यह ढङ्ग तो ठीक नहीं, क्योंकि सेना और जमीनमें गुलाम बनकर भाग न लेनेका फल उसी समय पूरा होगा जब कि संसारके सभी मजूर इस आन्दोलनमें भाग लें यानी संसारके सभी मजूर हड़ताल करें। ऐसा होना सम्भव नहीं है। यदि एक स्थानके मजूर भाग न लेंगे तो दूसरे देशोंके मजूर भाग लेने लग जायेंगे और जमींदार जमीनसे वञ्चित न होंगे। जो श्रमजीवी सेना या जमीनमें भाग लेना स्वीकार न करेंगे, वे अपनी अवस्था और भी खराब बनायेंगे और बाकी श्रमजीवियोंका उपकार भी न कर सकेंगे।

यह आपत्ति सर्वथा उचित मानी जाती यदि हड़तालका उद्देश्य सामने होता। मैं हड़तालके लिये प्रस्ताव ही नहीं कर रहा हूं। जो सेनाएं दूसरोंकी हत्याएं करती हैं, उनमें भाग न लेना चाहिये और न जमींदारोंकी जमीनमें ही किसी तरह भाग लेना चाहिये। इसलिये नहीं कि इन दोनोंके कारण श्रमजीवियोंकी दशा बिगड़ती है या उनकी गुलामी बढ़ती है, बल्कि इसलिये कि दोनों पापपूर्ण काम हैं और उनमें भाग न लेना उसी तरह आवश्यक है जिस तरह कोई चोरी, डकैती या नरहत्यामें भाग नहीं लेता। जमींदारोंके हाथमें जमीन रहनेसे जब लाखों आदमी भूखों मरते हैं, स्त्री, बच्चे और वृद्ध मनुष्य कष्ट पाते हैं और अकाल मृत्युको प्राप्त होते हैं,

तब जमीनके अधिकारियोंके अधिकारको अपने सहयोगसे लाभदायक बनाना पाप नहीं तो क्या है। श्रमजीवी इस पापका अनुभव करें, जो उनके द्वारा अप्रत्यक्ष रूपसे हो रहा है। उनके सहयोगसे ही उनके परिश्रमसे ऐसे लोग लाभ उठा रहे हैं, जो स्वयं कुछ भी परिश्रम नहीं करते।

लाखों करोड़ों आदमी हड़ताल किये बिना ही चोरी, डकैती हत्या और व्यभिचारमें सिर्फ इसीलिये भाग नहीं लेते कि उनमें भाग लेना पाप है। श्रमजीवियोंको भी जमींदारोंकी जमीनपर काम करना इसी तरह पापका साधन समझना चाहिये। श्रमजीवी जब अपनी आंखों देख रहे हैं कि जमीन दूसरोंकी जायदाद बन गयी इसीसे उनके भाई-बन्धु भूखों मर रहे हैं, तो इन्हें उस जमीनपर क्या कभी कामकर जमींदारोंका लोभ बढ़ाना चाहिये? आश्चर्य है कि श्रमजीवी इस भयानक पापमें किस तरह सहायक बन रहे हैं। मैं हड़तालका प्रस्ताव नहीं करता, बल्कि यह चाहता हूं कि श्रमजीवी सूक्ष्म दृष्टिसे उस पापको देखें जिसमें वे इस समय अज्ञानवश भाग ले रहे हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि हड़तालकी तरह यह असहयोग सबको शीघ्रतापूर्वक प्रेमबन्धनमें नहीं बांध लेता, परन्तु धीरे धीरे प्रेमकी गांठ मजबूत होती जाती है और हड़तालियोंकी अपेक्षा इन असहयोगियोंका दल अधिक उपयोगी होता है। हड़ताल खतम हो जानेपर हड़तालियोंका प्रेम-सम्बन्ध टूट जाता है, परन्तु असहयोगियोंका दल और पारस्परिक सम्बन्ध बढ़ता ही रहता है।

असहयोगी जमीनको जायदाद न मानकर उसमें योगदान नहीं देते, इसका यह अर्थ है कि वे एक बुराईका अनुभव करते हैं और स्वार्थसाधनकी कोई इच्छा न रखते हुए सब प्रकारके कष्टोंका सामना करनेको तैयार हैं। वे हड़ताल करनेवालोंकी तरह किसी क्षणिक् लाभके लिये, थोड़ेसे मनुष्योंके हितके लिये त्याग नहीं दिखा रहे हैं, बल्कि वे ऐसे सिद्धान्तके पालनमें दत्त-चित्त हैं जो सब कालमें, सब स्थानोंके मनुष्योंके लिये हितकारक है। ऐसे लोगोंकी संख्या बढ़नी स्वाभाविक है, क्योंकि जिसे भी बुराईका अनुभव होता जायेगा, वह त्यागियोंके दलमें शामिल होता जायेगा।

जिस समय श्रमजीवी भू-सम्पत्तिकी बुराईका अनुभव करने लग जायेंगे, उस समय सामाजिक सङ्गठनमें क्या परिवर्तन उपस्थित होगा इसका निश्चय करना कठिन है। इसमें सन्देह नहीं कि परिवर्तन अवश्य होगा। यह भी परिवर्तन उपस्थित हो सकता है कि श्रमजीवी जमीनपर जब किसी तरहका काम ही न करेंगे, तो जमींदार इनके साथ ऐसा प्रबन्ध कर लेंगे जिससे श्रमजीवियोंको लाभ पहुंचने लग जाये या वे बिल्कुल ही जमीन छोड़ दें। यह भी परिवर्तन हो सकता है कि जब सेनाओंमें रहनेवाले श्रमजीवी भू-सम्पत्तिकी बुराई समझ जायेंगे, तो अपने भाइयोंको न सतायेंगे और जमींदारोंकी भू-सम्पत्तिकी सरकारें रक्षा ही न कर सकेंगी। इस तरह जमीन जमींदारोंके हाथसे निकल जायेगी। सरकारें यह भी कर सकती हैं कि वे कानून बनाकर भू-सम्पत्तिका नाश ही कर दें

जब कि वे यह देखें कि जमीन सार्वजनिक सम्पत्ति बनानी ही होगी। इस तरह श्रमजीवियोंका उद्देश्य सिद्ध हो जायेगा।

यह कोई नहीं कह सकता कि श्रमजीवियोंके असहयोगका कितना व्यापक परिणाम होगा, परन्तु एक बात तो निश्चित है—इस सम्बन्धमें जो भी चेष्टा सच्चे मनसे ईश्वरपर पूरा विश्वास-कर की जायेगी, वह परिणाम उत्पन्न किये बिना कभी नष्ट नहीं हो सकती।

जिस कामको अधिकांश मनुष्य पसन्द नहीं किया करते, उसके सम्बन्धमें लोग कहा करते हैं कि मैं अकेला क्या कर सकता हूं। ऐसे लोग समझा करते हैं कि किसी कामकी सफलताके लिये सब या अधिकांश मनुष्योंकी आवश्यकता है; परन्तु वास्तवमें बुरा काम करनेके लिये ही अधिक आदमियोंकी जरूरत है। अच्छा काम करनेके लिये एक ही आदमी काफी है, क्योंकि अच्छे कामके साथ परमेश्वर है। जिस अच्छे काम करनेवालेके साथ परमेश्वर है, उसके साथ एक न एक दिन सभी मनुष्य होंगे। श्रमजीवियोंकी अवस्थाका सुधार तभी सम्भव है, जब कि वे परमेश्वर यानी अपने अन्तःकरणकी पवित्र आज्ञानुसार विशेष नैतिक बल काममें लाते हुए चेष्टा करें जो चेष्टा उन्होंने अबतक नहीं की है।

श्रमजीवियोंके लिये यह उपदेश ठीक नहीं कि जिन कार-खानोंमें वे काम करते हैं, उनपर अपना अधिकार जमा लें। यह उपदेश सर्वथा नैतिक बलशून्य है। हमको दूसरोंके प्रति

वैसा ही वर्ताव करना चाहिये, जैसा वर्ताव हम दूसरोंसे अपने प्रति कराना चाहते हैं।

श्रमजीवियोंको जहां उपर्युक्त उपदेश न मानना चाहिये, वहां सेनामें भर्ती होकर अपने भाइयोंको भी न सताना चाहिये और न जमींदारोंकी जमीनके कुत्ते ही बनना चाहिये। ऐसा करनेसे यदि व्यक्तियोंको थोड़ासा लाभ भी पहुंच जाये, तो भी वह तमाम श्रमजीवी दलको हानि पहुंचानेवाला काम है।

अबतक श्रमजीवियोंने अपने उद्धारके लिये जो कुछ प्रयत्न किया है, वह इसीलिये सफल नहीं हुआ कि वह नैतिक बलसे शून्य था। उन्होंने यह सिद्धान्त नहीं माना कि दूसरोंके साथ वैसा ही वर्ताव करना चाहिये, जैसा वर्ताव पानेकी इच्छा है। श्रमजीवियोंका उद्धार किसी प्रकारका आक्रमण सम्बन्धी काम करनेसे न होगा, बल्कि रक्षात्मक काम करनेसे होगा क्योंकि वह नैतिक बलपूर्ण और न्यायसङ्गत होगा। वह परमेश्वरकी इच्छाके भी अनुकूल होगा।

उसी समाजमें लोग दुःखी रहेंगे, जिसमें एक दूसरेसे लड़कर लाभ उठानेका नियम है। यह पशु-सिद्धान्त है। धार्मिक समाजमें कोई दुःखी रह ही नहीं सकता। जब लोग आपसमें बांटकर काम चलाने लग जायेंगे, तब किसी चीजकी कमी रहनी तो कठिन है। वह और भी अधिक दिखाई देने लगेगी। यदि कुछ लोगोंके पास खानेके लिये अन्न है और कुछ भूखों मर रहे हैं, तो सीधा उपाय यह है कि सब मिलकर

उसे बांट खायें। पीछे पता लगेगा कि सबका पेट भर जानेपर भी कुछ चीज बाकी बच गयी। जो लोग यह कहा करते हैं कि आवश्यकता भला-बुरा सब काम कराती है, वे ठीक तौरसे अपनी समझ काममें नहीं लाते। परस्परकी सहायताका अभाव बुरे काम कराता है। श्रमजीवी जमींदारोंकी जमीनपर काम न करते हुए कभी भूखे न रहेंगे यदि वे एक दूसरेको मदद देनेका सिद्धान्त काममें लाने लग जायें।

जो श्रमजीवी जमींदारोंकी जमीनपर काम करते जाते हैं या उनसे लगानपर जमीन लेते हैं, वे अपना और अपने भाइयोंका कितना अनर्थ करते हैं यह बात वे समझते नहीं। ज्यों ज्यों उन्हें अपने अनर्थका ज्ञान होता जायेगा और वे असहयोग करते जायेंगे, त्यों त्यों उनपर जमींदारोंके कम अत्याचार होने लगेंगे।

श्रमजीवियोंके उद्धारका ईश्वरेच्छाके अनुकूल यदि कोई मार्ग है, तो यही कि जमीन जमींदारोंके अधिकारसे छुडायी जाये। साथ ही यह बात भी ध्यानमें रखनी होगी कि जमीन छुडानेसे ही काम न चलेगा। श्रमजीवियोंको पहलेसे यह बात जान लेनी होगी कि जब जमीन जमींदारोंके पञ्जेसे निकल आयेगी, तो श्रमजीवियोंके बीच उसका विभाग किस तरह करना होगा। बहुतसे लोग समझते हैं कि जमींदारोंसे जमीन छीन लेनेसे ही सब काम भली भांति चल जायेगा। ऐसी बात नहीं है। यह कहना सहल है कि आलसी जमींदारोंसे जमीन छीनकर काम करनेवालोंको दे दो। इस बातका विचार रखनेकी बड़ी जरूरत

है कि जमीनका विभाग न्यायपूर्वक हो और इस ढङ्गसे विभाग किया जाये कि जमींदारोंको फिर जमीन पाकर श्रमजीवियोंपर अपना अधिकार जमानेका मौका न मिले।

कोई भी श्रमजीवी जहां चाहे जमीन जोते, यह सिद्धान्त उसी समय काममें लाया जा सकता है जब कि जमीन ज्यादा और आबादी कम हो तथा सब जमीन एक ही ढङ्गकी हो। जहांपर आबादी ज्यादा और जमीन कम है तथा वह भिन्न प्रकारकी है, तो उसका विभाग विचारपूर्वक करना पड़ेगा। यदि जितने मनुष्य हैं उनकी संख्याके अनुसार जमीनका विभाग किया जायेगा, तो ऐसे व्यक्तियोंको भी जमीन मिल जायेगी जो उसे जोत बो न सकेंगे। ये लोग किसी दूसरेको अपने हिस्सेकी जमीन बेच देंगे और पैसेवाले उसे खरीदकर बढ़ाते जायेंगे। इस तरह फिर जमींदार दिखाई देने लग जायेंगे जो विना परिश्रम किये जमीनसे लाभ उठाना चाहेंगे। यदि यह नियम कर दिया जायेगा कि कोई किसीको जमीन बेचे नहीं या पट्टा लिखकर न दे, तो बहुतसी जमीन बिना जोती बोयी रह जायेगी। जहांपर भिन्न प्रकारकी जमीन होगी, वहांपर उसका विभाग भी कठिनाईके साथ हो सकेगा। कहींपर जमीन ज्यादा उपजाऊ है और कहींपर कम। उस समय जमीनके बटवारेमें लड़ाई-झगड़ा खड़ा होगा। बहुत दिनोंसे लोग इन कठिनाइयोंको सुलझानेमें लगे हैं और उन्होंने बहुतसे उपाय सोचे हैं। साम्यवादी यह उपाय काममें लाना चाहते हैं कि जमीन सार्वजनिक सम्पत्ति

समझी जाये और सब लोग मिलकर उसे जोतें बोयें। इसके सिवा और भी उपाय हैं जिनका संक्षेपमें वर्णन कर देना जरूरी है।

१८ वीं शताब्दीमें स्काटलैण्डके विलियम ओगिलवीने अपनी राय दी थी कि जो मनुष्य जिस जमीनपर उत्पन्न हुआ है, उसे उस जमीनपर अन्य लोगोंके समान ही अधिकार है। उसके हिस्सेपर किसी दूसरेका अधिकार नहीं हो सकता और न वह जमीन किसीकी व्यक्तिगत सम्पत्ति है। यदि किसीके पास अपने हिस्सेसे ज्यादा जमीन है और उस अधिक भागके लिये कोई मांग प्रकट नहीं कर रहा है, तो अधिक जमीन रखनेवालेको सरकारके खजानेमें टेक्स देना चाहिये।

इङ्गलैण्डके टामस स्पेन्सकी राय है कि सब जमीन पुरोहितोंकी भूमि है और वे जिस तरह चाहें, उसे बांट सकते हैं। किसी भी व्यक्तिको अलग जमीनका स्वामी बननेका कोई अधिकार नहीं है। टामस स्पेन्सके सिद्धान्तका परिचय नीचेकी एक घटनासे जल्दी मिल सकता है। टामस स्पेंस एक दिन एक झाड़ीमें कुछ फल तोड़ रहे थे। झाड़ीके रक्षकने उनसे पूछा कि क्या कर रहे हो। उन्होंने जवाब दिया कि फल तोड़ रहा हूं। रक्षकने कहा कि फल तोड़ रहे हो और इस साहसके साथ उत्तर दे रहे हो। टामस स्पेन्सने कहा कि हां, साहसपूर्वक क्यों न उत्तर दूं। यदि कोई बन्दर आकर इस तरह फल तोड़कर खाने लगे, तो क्या तुम उससे नाराज होगे। क्या मैं जानवरोंसे भी कम हूं।

तुम कौन हो जो मेरे काममें बाधा पहुंचा रहे हो। झाड़ीके पहरेदार-ने जवाब दिया कि तुम्हें शीघ्र ही पता लग जायेगा जब मैं तुम्हें अनधिकार प्रवेशके लिये पकड़ूंगा। फल तोड़नेवालेने कहा कि यह तो प्रकृतिकी कृपाका फल है। यहांपर किसने पौधे लगाये हैं। वे पशु और मनुष्य सबके खानेके लिये हैं। उनपर किसका अधिकार हो सकता है। यह तो सबकी सम्पत्ति है। पहरेदारने उत्तर दिया कि नहीं, यह ड्यूक आफ पोर्टलैण्डका बाग है। फल तोड़नेवालेने कहा कि मैं यह बात नहीं मान सकता। प्रकृतिका नियम है कि जो पहले पावे वही तोड़ ले। ड्यूक यदि फल खाना चाहें, तो उन्हें पहले आना चाहिये। अन्तमें स्पेन्सने कहा कि यदि मुझे ऐसे देशकी रक्षा करनेका भार दिया जाये जिसमें मुझे स्वेच्छासे एक फल तोड़नेका भी अधिकार नहीं है, तो मैं अपनी बन्दूक फेंककर यही कहूंगा कि ड्यूक सरीखे आदमी ही देशकी रक्षा करें जो उसके स्वामी होनेका दावा रखते हैं।

टामस पेनकी राय थी कि जमीन सबकी सम्पत्ति है। उसपर किसीका खास अधिकार नहीं हो सकता। कोई जमीन-का उत्तराधिकारी नहीं बन सकता। जो कोई मरे, उसकी मृत्युके बाद जमीन सार्वजनिक सम्पत्ति बना दी जाये।

डव साहबका सिद्धान्त है कि जमीनकी कीमत दो तरहसे हैं। एक तो जमीनकी ही कीमत हुआ करती है और दूसरे परिश्रमका मूल्य है, जो उस जमीनपर किया जाता है। जमीनकी कीमत

सब देशका धन है और परिश्रमका मूल्य व्यक्तियोंका धन है। इसलिये जमीन खास व्यक्तियोंके अधिकारमें नहीं जा सकती। जमीन सब देशकी ही सम्पत्ति होनी चाहिये।

जापानमें भूमि-उद्धारक समिति है। उसका सिद्धान्त है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने भागके समान जमीन रखनेका अधिकारी है। उसे इस हिस्सेके लिये निश्चित कर चुकाना होगा। वह जिस किसी व्यक्तिके पास उसके भागसे अधिक जमीन देखेगा, उससे मांग सकेगा। मेरी रायमें हेनरी जार्जकी सम्मति न्यायसङ्गत और कार्यमें परिणत होने योग्य है।

हेनरी जार्जकी सम्मति नीचे एक उदाहरण देकर समझायी जाती है। मान लिया जाये कि किसी स्थानमें दो जमींदारोंके अधिकारमें सारी जमीन है। एक जमींदार बहुत मालदार है और वह विदेशमें रहता है। दूसरा जमींदार ज्यादा मालदार नहीं और स्वदेशमें ही रहता है। वह अपनी जमीन किसानोंको लगानपर दिये हुए है। इस तरह एक सौ किसान उसकी जमीन लिये हुए हैं। इसके सिवा उसी स्थानमें सैकड़ों ऐसे आदमी हैं जो मजूरी करते हैं और उनके पास जमीन नहीं है। वे कारीगर वगैरह हैं। यदि ऐसे स्थानके अधिवासी यह निश्चय करें कि जमीन किसी एक-दोकी नहीं, सबकी सार्वजनिक सम्पत्ति है और वे उस जमीनको आपसमें बांट लेना चाहते हैं, तो उस दशामें वे क्या करेंगे।

एक दोसे जमीन लेकर यदि कहा जाये कि सभी उसे काममें लायें

तो ऐसा करनेसे लड़ाई-झगड़ा खड़ा हो जायेगा ; क्योंकि जमीनका एक ही टुकड़ा कई आदमी चाहेंगे। यदि कहा जाये कि कुछ लोग मिलकर खेती करें और फिर आपसमें पैदा हुआ अन्न बांट लें, तो यह प्रबन्ध भी सन्तोषजनक न होगा ; क्योंकि बहुतसे आदमियोंके पास हल, बैल इत्यादि न होंगे और बहुतसे जोतने बोनेका ज्ञान ही न रखते होंगे। सब प्राणियोंको बराबर बराबर जमीन बांट दी जाय यह भी सम्भव नहीं। यदि जमीनके बहुतसे टुकड़े कर दिये जायें और हरएक आदमीको समान श्रेणीकी जमीन खेती, चरागाह और लकड़ी आदिके लिये दी जाये, तो जमीनके बहुत ज्यादा टुकड़े हो जायेंगे। इसके सिवा यह भी भय है कि जो जमीन जोतना बोना न जानते होंगे, वे अपना हिस्सा दूसरेको बेच देंगे। इस तरह जमींदार पैदा होने लग जायेंगे।

इन सब कठिनाइयोंको हल करनेके लिये उस स्थानके अधिवासी निश्चय करते हैं कि जिन दो जमींदारोंके पास जमीन है, वे उसे अपने ही पास रखें और सार्वजनिक कोषमें उस जमीनकी कीमत जमा कर दें। यह कीमत जमीनके मूल्यके अनुसार बांधी जायेगी न कि परिश्रमके मूल्यके अनुसार जो उस जमीनपर किया जायेगा। खजानेमें गया हुआ रुपया सब आपसमें बराबर बांट लेते हैं।

जिसके पास जमीन है, उससे जमीनकी कीमतका रुपया खजानेमें डलवाकर फिर उस रुपयेको व्यक्तियोंके बीच बांटना बड़ा जटिल काम होगा। सभी अधिवासियोंको स्कूल, अस्प-

ताल, सड़कों और दमकलोंके लिये रुपया देना ही होगा। इस तरह खजानेसे रुपया लेकर फिर सबको सार्वजनिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये उस रुपयेका कुछ भाग देना होगा। इस बखेड़ेसे छुटकारा पानेके लिये सब लोग निश्चय कर लेते हैं कि खजानेमें आया हुआ रुपया सार्वजनिक कामोंमें खर्च किया जायेगा। जिनके पास कुछ भी जमीन नहीं है, उन्हें भी इन सार्वजनिक संस्थाओंसे लाभ उठानेका अवसर मिलेगा।

इस प्रकारका नियम तय हो जानेपर जमींदारों और छोटे छोटे किसानोंसे जमीनकी कीमतके अनुसार रुपया वसूल किया जायेगा, जो सार्वजनिक सस्थाएं चलानेमे व्यय किया जायेगा। जो लोग जमीन नहीं रखते, उनसे कुछ भी न लेनेपर भी उन्हें सार्वजनिक सस्थाओंसे समान लाभ उठानेका अवसर दिया जायेगा।

इस प्रबन्धका यह फल होगा कि जो लोग स्वयं परिश्रम न कर सकेंगे, वे अपने पास ज्यादा जमीन रखना पसन्द न करेंगे और उनकी जमीन ऐसे लोगोंके अधिकारमें आ जायेगी, जो अधिक परिश्रमकर जमीनकी कीमत चुकानेपर भी कुछ बचा सकेंगे। जिनके पास बिल्कुल जमीन न होगी, वे भी कुछ जमीन लेकर उसके लिये परिश्रम करेंगे। इस तरह जमीन उन्हीं लोगोंके अधिकारमें रहेगी,जो परिश्रमकर उससे अधिक आय वसूल करना चाहेंगे। साथ ही सार्वजनिक संस्थाएं अधिक रुपया पाकर अधिक उन्नति करने लग जायेंगी। जमीनके सम्बन्धमें झगड़ा बखेड़ा

या खूनखराबी भी न होगी, क्योंकि सब उतनी ही जमीन रखना चाहेंगे जितनीके लिये वे परिश्रमकर काफी आय प्राप्त कर सकेंगे। हेनरी जार्जकी यह कार्यप्रणाली तमाम संसारके मनुष्यों या अलग अलग देशोंके बीच बहुत आसानीसे काममें लायी जा सकती है।

मैं सारांशमें यही कहना चाहता हूं कि श्रमजीवी उतनी ही जमीन लेनेकी चेष्टा करें जिसके लिये वे स्वयं परिश्रम कर सकते हों। आवश्यकतासे अधिक जमीन रखनेका कष्ट न उठायें। केवल इतनी जमीनकी आवश्यकता है जिसपर अपना निवास हो सके और पेट भरा जा सके।

जमीन पानेके लिये किसी तरहकी हड़ताल, जुलूस या दङ्गा-फसादकी जरूरत नहीं। न इस बातकी जरूरत है कि देशके शासनमें अपने प्रतिनिधि अधिक हों। एक चीजकी जरूरत है और वह यह कि जिसे बुराई समझा जाये, उसमें कभी भाग न लिया जाये। भू-सम्पत्तिका कभी समर्थन न किया जाये। यह समर्थन सेनामें भर्ती होने या जमीनपर काम करने तथा उसे लगानपर लेनेसे होता है।

इस बातपर भी ध्यान देना होगा कि जब जमीन जमींदारोंसे मिल जाये, तो उसका विभाग किस तरह करना होगा। यह कभी न समझना होगा कि जमींदारोंसे ली हुई भूमि किसीकी खास सम्पत्ति हो सकेगी। किसीको भी भू-सम्पत्तिका स्वामी न बनाना होगा, चाहे एक इञ्च ही जमीन क्यों न हो। जमीनका हवा

और पानीके समान सबकी सार्वजनिक सम्पत्ति समझना होगा और उसका आपसमें किसी ढङ्गसे विभाग कर लेना होगा, जो ढङ्ग सबको पसन्द हो।

जमीनपर अधिकार पानेके लिये किसी दलको वशमें करनेकी नहीं, बल्कि अपने आपको वशमें करनेकी चेष्टा करनी होगी। लोग इसीलिये कष्ट पाते हैं कि वे बुरा जीवन व्यतीत करते हैं। इससे घृणित और कोई विचार नहीं कि मनुष्यकी बुरी दशाका कारण दूसरे मनुष्य हैं, अपनी आत्मा नहीं। लोग जिस समय यह समझते हैं कि किसी बाहरी कारणसे बुरी दशा हो रही है तो उस कारणको बदलनेके लिये उद्योग करते हुए वे अपनी दशा और भी शोचनीय बनाते हैं। यदि वे अपनी आत्माकी जाँच करनेका उद्योग करें, तो उनकी बुरी दशाका शीघ्र ही अन्त हो सकता है।

जो लोग ईश्वरीय इच्छाके विपरीत बुरा जीवन व्यतीत करते हैं उनका सुधार होना सम्भव नहीं। यदि ईश्वरीय इच्छाके अनुसार चला जाये, तो बुरी दशा नहीं रह सकती। मनुष्यकी उन्नतिके लिये बाहरी नहीं, भीतरी सुधारकी आवश्यकता है। उसे बुराईमें भाग लेना छोड़ देना चाहिये यदि वह ले रहा हो और अच्छा काम शुरू कर देना चाहिये यदि उसे न कर रहा हो। मनुष्य जितना ही अधिक ईश्वरीय नियम काममें लायेगा यानी एक दूसरे-की सहायतापर कमर कसेगा, उतनी ही वह उन्नति कर सकेगा। इस सिद्धान्तकी सहायतासे गुलामीका अन्त होता जायेगा।

यह बात बिल्कुल सच कही गयी है कि तुम सत्यको जानो और सत्य तुम्हें स्वतन्त्र बनायेगा।

(४)
एक ही उपाय।

तमाम संसारमें एक अरबसे ज्यादा श्रमजीवी हैं। जितना भी अन्न, वस्त्र संसारमें दिखाई देता है, वह सब श्रमजीवियोंने ही उत्पन्न किया है। बड़े बड़े बाग-बगीचे, ऊंचे ऊंचे महल और राजा-रईस, सेठ-साहूकार सभी श्रमजीवियोंके परिश्रमके कारण दिखाई दे रहे हैं। श्रमजीवी जो कुछ उत्पन्न करते हैं उससे वे स्वयं लाभ नहीं उठा सकते, बल्कि सरकार और मालदार आदमी लाभ उठाते हैं। श्रमजीवी तो भूखों मरते हैं, आधे नंगे रहते हैं, विद्याहीन रहते हैं और गुलामीमें अपने दिन काटते हैं। जिन लोगोंको वे परिश्रमकर बढ़िया भोजन, वस्त्र और महल देते हैं, उन्हीं स्वार्थियोंकी घृणाके पात्र बनते हैं।

श्रमजीवियोंको जमीनसे वञ्चित किया जाता है और वह उन लोगोंकी जायदाद बनती है, जो कुछ भी परिश्रम नहीं करते। श्रमजीवी अपना पेट भरनेके लिये जमींदारोंकी गुलामी किया करते हैं। यदि कोई खेती न कर किसी कारखानेमें जाकर मजूरी करने लग जाता है, तो वह दूसरे धनी आदमियोंका गुलाम बन जाता है। उनके लिये उसे आजीवन लगातार दस, बारह और चौदह घण्टे हर रोज काम करना पड़ता है। इस तरह उसका स्वास्थ्य मिट्टीमें मिल जाता है। यदि कोई पुरुषार्थी अलग

जमीन लेकर मिहनत करने लग जाता है, तब भी वह स्वतन्त्रता-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। उससे कर मांगा जाता है, वह सेनामें तीन चार वर्षतक जबर्दस्ती काम करनेके लिये वाध्य किया जाता है और उसे सेनाका व्यय सहना पड़ता है। यदि वह जमीनको काममें लाता हुआ कर नहीं चुकाता या हड़तालकी तैयारी करता है या अपने स्थानपर किसी दूसरे आदमीको काम करनेसे रोकता है, तो उसके विरुद्ध सेना भेजी जाती है, वह घायल किया जाता है या मार डाला जाता है या पहलेकी तरह काम करने और कर चुकानेके लिये वाध्य किया जाता है।

इस तरह वे तमाम संसारमें मनुष्योंकी तरह नहीं, बल्कि लदाऊ जानवरोंकी तरह जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें तमाम जीवन वह काम करना पड़ता है जो उनके लिये नहीं, उनके अत्याचारियोंके लिये आवश्यक है। उन्हें इस कामके बदलेमें केवल इतना ही भोजन और वस्त्र दिया जाता है कि वे अपने अत्याचारियोंका काम करनेमें समर्थ बने रहें। कुछ थोड़ेसे आदमी इन श्रमजीवियोंके परिश्रमसे लाभ उठाते हुए भोग-विलास करते हैं और आलसमें दिन काटते हैं। लाखों आदमियोंकी मिहनतका फल जिस ढङ्गसे चाहते हैं, वर्बाद किया करते हैं।

रूसके सम्राट् द्वितीय निकलसके राज्याभिषेकके समय गरीबोंको मुफ्तमें शराब और मांस रोटी बांटी गयी थी। जिस स्थान पर भोजन कराया जानेवाला था, वहां बड़ी भारी भीड़ जमा हुई

यह बात बिल्कुल सच कही गयी है कि तुम सत्यको जानो और सत्य तुम्हें स्वतन्त्र बनायेगा।

(४)

एक ही उपाय।

तमाम संसारमें एक अरबसे ज्यादा श्रमजीवी हैं। जितना भी अन्न, वस्त्र संसारमें दिखाई देता है, वह सब श्रमजीवियोंने ही उत्पन्न किया है। बड़े बड़े बाग-बगीचे, ऊंचे ऊंचे महल और राजा-रईस, सेठ-साहूकार सभी श्रमजीवियोंके परिश्रमके कारण दिखाई दे रहे हैं। श्रमजीवी जो कुछ उत्पन्न करते हैं उससे वे स्वयं लाभ नहीं उठा सकते, बल्कि सरकार और मालदार आदमी लाभ उठाते हैं। श्रमजीवी तो भूखों मरते हैं, आधे नंगे रहते हैं, विद्याहीन रहते हैं और गुलामीमें अपने दिन काटते हैं। जिन लोगोंको वे परिश्रमकर बढ़िया भोजन, वस्त्र और महल देते हैं, उन्हीं स्वार्थियोंकी घृणाके पात्र बनते हैं।

श्रमजीवियोंको जमीनसे वञ्चित किया जाता है और वह उन लोगोंकी जायदाद बनती है, जो कुछ भी परिश्रम नहीं करते। श्रमजीवी अपना पेट भरनेके लिये जमींदारोंकी गुलामी किया करते हैं। यदि कोई खेती न कर किसी कारखानेमें जाकर मजूरी करने लग जाता है, तो वह दूसरे धनी आदमियोंका गुलाम बन जाता है। उनके लिये उसे आजीवन लगातार दस, बारह और चौदह घण्टे हर रोज काम करना पड़ता है। इस तरह उसका स्वास्थ्य मिट्टीमें मिल जाता है। यदि कोई पुरुषार्थी अलग

ीन लेकर मिहनत करने लग जाता है, तब भी वह स्वतन्त्रता-
र्क अपना जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। उससे कर
ागा जाता है, वह सेनामें तीन चार वर्षतक जबर्दस्ती काम करनेके
ये बाध्य किया जाता है और उसे सेनाका व्यय सहना पड़ता
। यदि वह जमीनको काममें लाता हुआ कर नहीं चुकाता
। हड़तालकी तैयारी करता है या अपने स्थानपर किसी दूसरे
ादमीको काम करनेसे रोकता है, तो उसके विरुद्ध सेना भेजी
ाती है, वह घायल किया जाता है या मार डाला जाता है या
हलेकी तरह काम करने और कर चुकानेके लिये वाध्य किया
ाता है।

इस तरह वे तमाम संसारमें मनुष्योंकी तरह नहीं, बल्कि
्दाऊ जानवरोंकी तरह जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें तमाम
ीवन वह काम करना पड़ता है जो उनके लिये नहीं, उनके
त्याचारियोंके लिये आवश्यक है। उन्हें इस कामके बदलेमें केवल
तना ही भोजन और वस्त्र दिया जाता है कि वे अपने अत्या-
ारियोंका काम करनेमे समर्थ बने रहें। कुछ थोड़ेसे आदमी
न श्रमजीवियोंके परिश्रमसे लाभ उठाते हुए भोग-विलास करते
ैं और आलसमें दिन काटते हैं। लाखों आदमियोंकी मिहनतका
फल जिस ढङ्गसे चाहते हैं, बर्बाद किया करते हैं।

रूसके सम्राट् द्वितीय निकलसके राज्याभिषेकके समय गरीबों
को मुफ्तमें शराब और मांस रोटी बांटी गयी थी। जिस स्थान-
पर भोजन कराया जानेवाला था, वहां बड़ी भारी भीड़ जमा हुई

और लोगोंने एक दूसरेको धक्का देना शुरू किया। इस धूममें बहुतसे आदमी गिर गये और भीड़के नीचे आ गये। इस तरह कई हजार आदमी मर गये। जब धूम खतम हो गयी तब प्रश्न उपस्थित हुआ कि इतने आदमियोंकी मृत्युका क्या कारण है। किसीने पुलिसके प्रबन्धकी निन्दा की, किसीने सम्राट्‌की निन्दा की जिन्होंने भद्दी रीतिसे लोगोंको खानेके बहाने एकत्र किया। सबने अपनेको छोड़कर दूसरोंको दोषी ठहराया, परन्तु असलमें दोष भीड़का ही था जिसने थोड़ीसी शराब और रोटीकी धुनमें अपने भाइयोंका कुछ भी ख्याल न रखा और स्वार्थमें पागल हो गयी। सबकी यही चेष्टा थी कि अपने पड़ोसीसे पहले कुछ पा लिया जाये। क्या श्रमजीवी इसी दोषमें नहीं पड़ रहे हैं! वे भूखों मरते हैं, स्वास्थ्य खोते हैं, नङ्गे रहते हैं और जानसे मार डाले जाते हैं, परन्तु थोड़ेसे स्वार्थमें पड़े विना नहीं रहते जो स्वार्थ उन्हें और उनके लाखों करोड़ों भाइयोंको तमाम जीवन दुखी बनाये रहता है।

श्रमजीवी कभी सरकारोंकी, कभी जमींदारोंकी और कभी कारखानेके स्वामियोंकी तथा कभी सैनिक दलोंकी निन्दा किया करते हैं; परन्तु जमींदार उनके परिश्रमसे लाभ उठाते हैं और सरकारें कर वसूल करती हैं। कारखानेके मालिक उनसे काम कराते हैं तथा सेनाएं उन्हें पशुबलके नीचे दबाये रहती हैं, क्योंकि श्रमजीवी इन सबको रक्तशोषणके काममें सहायता ही नहीं देते, बल्कि वे स्वयं ही रक्तशोषणके साधन बने हुए हैं और जो काम

स्वयं कर रहे हैं उसके सम्बन्धमें दूसरोंकी शिकायत किया करते हैं। जमींदार यदि लाखों बीघा जमीनसे बिना कुछ काम किये ही लाभ उठाता है, तो इसका कारण यही है कि उसे जमीन जोतने बोने और फसलकी रक्षा करनेके लिये लाखों मजूर मिल जाते हैं। सरकारें कर वसूल करनेमें इसीलिये समर्थ होती हैं कि मजूरोंके भाई-बन्धु ही थोड़ेसे लोभमें पड़कर पटवारी, तहसीलोंके चपरासी और पुलिसमैन बनते हैं। इस तरह श्रमजीवी सरकारकी जिस कड़ाईकी शिकायत करते हैं, उस कड़ाईको वे स्वयं काममें लाते हैं। कारखानेवालोंके सम्बन्धमें शिकायत की जाती है कि वे कम मजूरी देते हैं और ज्यादा काम लेते हैं, परन्तु इसमें किसका अपराध है? श्रमजीवी ही प्रतिद्वन्द्वी बनकर अपनी मजूरी कम कराते हैं और पहरेदार, जमादार बनकर अपने भाइयोंसे ज्यादा काम लेते हैं। अपने स्वामियोंके हितके लिये अपने भाइयोंपर जुर्माना कराते हैं और उन्हें तरह तरहसे तङ्ग करते हैं।

श्रमजीवी कहा करते हैं कि जब कभी हम जमीनको अपने अधिकारमें करना चाहते हैं तो हमारे विरुद्ध सेना भेजी जाती है, परन्तु इस सेनामें कौन हैं? वही श्रमजीवी तो हैं जो थोड़ेसे लाभके लिये अपने भाइयोंको भयभीतकर धनवानोंके गुलाम बनाये रहते हैं। वे ईश्वरीय नियम और अपनी अन्तरात्माकी आवाजके विरुद्ध अधिकारियोंके इशारेपर लोगोंको मार डालना धर्म समझते हैं। इस तरह श्रमजीवियोंके सभी कष्ट उनके

ी कारण बने हुए हैं। यदि वे धनवानों और सरकारोंको
दद देना छोड़ दें, तो उनपर अत्याचार होने एकदम बन्द हो
ायें। फिर वे ऐसा काम क्यों कर रहे हैं जो उनका सर्व-
ाश कर रहा है?

ईश्वरीय नियम है कि मनुष्यको एक दूसरेकी सहायता
करनी चाहिये। सभी देशोंके प्रसिद्ध दार्शनिकोंने इस नियम-
र जोर दिया है। यह नियम बड़ा सरल है और वह मनुष्यों-
को अधिकसे अधिक लाभ पहुंचा सकता है। मनुष्योंको जिस
समय इस नियमका ज्ञान हो जाये, उन्हें उसके पालनमें विलम्ब
न करना चाहिये। स्वयं इसका पालन करते हुए वे दूसरोंको
भी यही शिक्षा दें कि इस नियमके अनुसार चलो।

सभी धर्मशास्त्रोंमें परस्परकी सहायतापर बड़ा जोर दिया
गया है और सब धर्मोंका सार इसी सहायतामें बताया है।
आश्चर्य तो इस बातका है कि लोग इसपर भी इस सीधे नियमको
नहीं जानते और यदि जान भी लेते हैं, तो उसे अनावश्यक
समझ उसके अनुसार न तो स्वयं काम करते हैं और न दूसरोंको
ही उसके अनुसार चलनेकी राय देते हैं।

जब मनुष्य इस साधारण नियमका पालन नहीं करता कि
हमें दूसरोंके साथ वैसा ही वर्ताव करना चाहिये जैसे वर्तावकी
आशा हम दूसरोंसे रखते हैं, तब वह अपने लिये अधिकसे अधिक
सुखचैन ढूंढ़ता है और इस तरह मनुष्यके कल्याणमें बाधा
पड़ती है। जो आदमी दूसरोंकी परवा न कर अपने लाभकी

ओर विशेष ध्यान देता है, वह ऐसे आदमियोंकी शरण लेता है जो उसकी रक्षा कर सकें। वह इन शक्तिसम्पन्न मनुष्योंको सहायता देता है। ये शक्तिसम्पन्न मनुष्य अपनेसे अधिक बलशाली मनुष्योंकी शरणमें जाकर उनकी सहायता किया करते हैं। इस तरह परस्पर लाभ पहुचानेकी इच्छा न रहनेसे समाजमें कुछ थोड़ेसे आदमियोंका बल बढ़ जाया करता है और वे दूसरोंको गुलाम बना लेते हैं।

जो थोड़ेसे आदमी अधिक आदमियोंको गुलाम बनाये हुए हैं, वे पारस्परिक सहायताके सिद्धान्तको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं और अपने अधीन मनुष्योंको उसे स्वीकार नहीं करने देते। ये शक्तिसम्पन्न मनुष्य जानते हैं कि हमारी शक्ति इसी लिये है कि हमारे अधीन मनुष्य सदा आपसमें लडा करते हैं और एक दूसरेको अपने वशमें करना चाहते हैं। इसीसे वे गुलामीमें फसे हुए लोगोंसे पारस्परिक सहायताका सिद्धान्त दूर रखते हैं।

पारस्परिक सहायताका नियम तो बडा सरल है इसलिये किसीकी ताकत नहीं जो किसीको उसे स्वीकार करनेसे रोक सके, परन्तु शक्ति भोगनेवाले मनुष्य इस सिद्धान्तको निर्बलोंसे दूर रखनेके लिये बहुतसे नियम और कानून बना डालते हैं, जो सिद्धान्तको स्वीकृतिमें बाधक होते हैं। यह भी कहा जाता है कि ये नियम और कानून बड़े महत्वके हैं और उनके सामने और किसी नियम या सिद्धान्तके माननेकी आवश्यकता नहीं है।

शक्तिको भोगनेवालोंमें पुरोहित और धर्माचार्य भी हैं जो धर्मका सहारा लेकर अनेक नियम बनाया करते हैं और उन्हें ईश्वरीय नियम बताकर सदा उनके पालनपर जोर दिया करते हैं। परस्परकी सहायताका नियम इन नियमोंकी धूममें छिप जाता है और मनुष्य असली नियमको भूलकर दूसरे नियमोंका पालन करनेकी चिन्तामें लग जाते हैं जो विशेष महत्वके नहीं हैं, परन्तु स्वार्थी मनुष्य उन्हें महत्व दिये रहते हैं।

शासन करनेवाले अपने नियम बनाते हैं और अपने हाथके कठपुतले धर्माचार्योंके नियमोंका प्रचार किया करते हैं। ये ऐसे नियम बनाते हैं जो परस्परकी सहायताके नियममें बाधा पहुंचानेवाले हैं। शासकोंके नियमोंका पालन न करनेसे दण्ड दिया जाता है। इस तरह शक्ति रखनेवाले निर्बलोंको अपने उद्धारका नियम नहीं मानने देते।

विद्वान् और धनी मनुष्य ईश्वरके किसी खास नियमको न मानकर सदा अपने वैज्ञानिक नियमोंका आविष्कार किया करते जिन्हें धनी मनुष्य सुखवृद्धिके लिये मानते हैं। ये लोग अपने समान ही दूसरोंका जीवन भी आलसी बनाना चाहते हैं और सबको स्कूल, थियेटर, बायस्कोप और सभाओंमें जानेको सलाह दिया करते हैं। ये लोग कहा करते हैं कि वैज्ञानिक नियमोंका पालन करनेसे श्रमजीवियोंके सभी कष्ट दूर हो जायँगे, इसलिये परस्परकी सहायताके नियमका तो ये लोग नाम ही नहीं लेते।

उपर्युक्त श्रेणियोंमेंसे कोई भी श्रेणी परस्परकी सहायताके सिद्धान्तका विरोध नहीं करती, परन्तु वे सब मिलकर इतने नये नियम सामने उपस्थित कर देती हैं कि उन सबके बीच ईश्वरका सरल और सर्वोपकारी नियम छिप जाता है।

इस तरह श्रमजीवी असली उद्धार करनेवाले सिद्धान्तसे वञ्चित रहकर सरकारों और सम्पन्न मनुष्योंके अधीन रहकर पीढ़ी दर पीढ़ी अपना जीवन दुःखमय बनाया करते हैं। वे अपना जीवन दुःखमय बनानेके साथ अपने भाइयोंको भी दुखी बनाये रहते हैं। अपना उद्धार चाहनेके लिये वे चालाक और मतलबी आदमियोंके बनाये हुए नियमोंकी शरण लिया करते हैं—जैसे कि देवमन्दिरोंमें जाकर लम्बीचौड़ी प्रार्थनाएं किया करते हैं, राज्यके नियमोंका अक्षरशः पालन करते रहते हैं, सभा-समितियां बनाया करते हैं, व्याख्यान दिया करते और सुना करते हैं। हड़तालें करते हैं या दङ्गाफसाद और क्रान्तिमें भाग लेते हैं; लेकिन असली ईश्वरीय नियमका पालन नहीं करते जो नियम उनका उद्धार अवश्य ही कर सकता है।

जो लोग चालाक और स्वार्थी आदमियोंके लम्बेचौड़े सिद्धान्त बहुत दिनोंसे सुनते आ रहे हैं, वे अवश्य ही इस बातपर सन्देह करेंगे कि परस्परकी सहायताका सिद्धान्त ईश्वरीय नियम है और वह मनुष्यके जीवनका प्रधान अङ्ग है; क्योंकि इस नियममें कोई पेचीदा या घुमावफेरकी बात नहीं। लोगोंकी धारणा बन गयी है कि ईश्वरीय नियम इतना सरल हो ही नहीं सकता

और वह सबको मालूम नहीं हो सकता जबतक कि आचार्य और पुरोहितोंकी कृपा न हो, जो अपनी शक्ति और अधिकारके लिये शासन करनेवालोंका मुंह ताका करते हैं और अपने उच्च-पदकी रक्षाके लिये सरकारका समर्थन किया करते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि परस्परकी सहायताका नियम बड़ा सरल और संक्षिप्त है। वह वर्षोंके अनुभवके बाद मनुष्यके ध्यानमें आया है। वह किसी स्वार्थी दलके दिमागसे नहीं निकला है। आजकलके धार्मिक और राजशासन-सम्बन्धी नियम बड़े लम्बे चौड़े और गूढ़ होते हैं और बहुत थोड़े आदमी उनका ज्ञान रखते हैं—जैसे कि जायदाद, चुनाव, दण्ड आदिके सम्बन्धमें सब आदमी नहीं जानते, परन्तु परस्परकी सहायताका नियम सब कोई जान सकता है। इसे जाननेके लिये किसी प्रकारकी शिक्षाकी आवश्यकता नहीं है और न किसीका धर्म, पद और अवस्था उसके जाननेमें बाधक हो सकते हैं।

इसके सिवा धार्मिक और शासनसम्बन्धी नियम एक स्थान या एक कालमें ठीक मान लिये जाते हैं, परन्तु दूसरे काल या स्थानमें वे ठीक नहीं माने जाते। परस्परकी सहायताका नियम सब स्थानोंमें और सब कालमें समान रूपसे मान्य है। जो लोग उसे एक बार मान चुके उसे फिर कभी न माननेकी आवश्यकता ही नहीं रहती। अन्य नियमों और इस नियममें यह भी भेद है कि अन्य नियमोंसे मनुष्यको सुख-शान्ति प्राप्त नहीं होती और कभी कभी उनके कारण शत्रुता और कष्ट बढ़

जाया करते हैं, परन्तु यह प्रधान नियम सदा ही सुख-शान्ति देनेवाला है।

परस्परकी सहायताका नियम अशान्तिके स्थानमें शान्ति और कष्टके स्थानमें सुख उपस्थित करनेवाला है यह चाहे किसी स्थान या कालमें क्यों न माना जाये। इस सिद्धान्तके आधारपर ही मनुष्योंके बीच अनेक सम्बन्ध स्थापित होते हैं। यदि इस नियमकी प्रधानता स्वीकार कर ली जाये, तो मनुष्योंका उद्धार हो जाये और व्यक्ति व्यक्ति तथा समाज और व्यक्तिके बीच किसी तरहका झगड़ा न रहे। जिस तरह बूढ़ों और बच्चोंको आजकल अन्य धार्मिक और वैज्ञानिक नियम समझाये जाते हैं जो वास्तवमें हानिकारक हैं, उसी तरह यदि यह प्रधान नियम सिखाया जाये तो मनुष्यके जीवनमें परिवर्तन उपस्थित हो जाये और इस परिवर्तनके साथ उस अत्याचारका भी अन्त हो जाये जो आजकल अधिकांश मनुष्योंको पीड़ित कर रहा है।

पारस्परिक सहायताका नियम जिस तरह ईश्वरीय है, उसी तरह यह नियम भी ईश्वरीय ही समझना चाहिये कि किसीकी जान न ली जाये। परन्तु जिस तरह अनेक नियमोंकी धूममें पहला नियम भुला दिया गया, वही दशा दूसरे नियमकी भी हुई। यद्यपि किसीने पहले नियमकी तरह दूसरे नियमका विरोध नहीं किया, परन्तु अन्य नियम महत्वपूर्ण बता दिये गये और उनके बीचमें ईश्वरीय नियम न ठहर सका। मनुष्योंके

प्राणोंकी पवित्रता स्वार्थियोंने स्वीकार न होने दी। यदि लोग जिस तरह उपवासके दिनोंमें मांस न खाने, देवमन्दिरोंमें अश्लील आचरण न करने आदिके नियमोंको महत्व देकर उनका पालन करते हैं, उसी तरह यदि किसीकी जान न लेनेका नियम माना जाता, तो मनुष्योंकी वर्तमान दुर्दशा ही न होती; क्योंकि न तो लड़ाइयां होतीं और न कोई किसीका गुलाम ही बनता। जब लोगोंको प्राणोंका भय दिखाई देता है, तभी वे दूसरोंकी गुलामी स्वीकार करते हैं। यदि सब अपने प्राणोंको सुरक्षित समझते, तो क्यों किसीकी गुलामीके बन्धनमें पड़ते।

लोगोंने बड़ी चालाकीसे ईश्वरीय नियमको दबाया। बहुतसे छोटे छोटे नियम बनाये गये और उन्हें बड़ा भारी महत्व दिया गया। भूखे रहने, नमक न खाने और माला फेरनेसे मोक्षका द्वार खुल जाना सम्भव बताया गया और लोग इन छोटे छोटे नियमोंपर मोहित हो ईश्वरके प्रधान नियमको यहांतक भूल गये कि उसका पालन तो दूर रहा, उसके विरुद्ध भी आचरण करने लगे। इससे ईश्वरीय नियमकी उपयोगिता प्रकट न हो सकी। दूसरेकी जान न लेने और परस्परमें सहायता करनेका ईश्वरीय नियम काम न आया।

मनुष्य दुर्दशामें इसलिये नहीं पड़े कि उन्हें ईश्वरीय नियमका ज्ञान न था, बल्कि दुर्दशाका कारण वे मनुष्य बने जो अपने या अपने संरक्षकोंके स्वार्थके लिये नियमपर नियम बनाते चले गये। वे इन नियमोंको ईश्वरीय नियम बताते गये और उनका महत्व

कभी कभी ईश्वरीय नियमोंसे भी अधिक निश्चित किया। इस समय यदि मनुष्यका उद्धार सम्भव है, तो इसी बातपर कि वे स्वार्थियोंके बनाये हुए नियमोंके चक्करमें न पड़कर ईश्वरीय नियमका महत्त्व समझ लें। वे अपनेको ईश्वरीय नियमके अनुसार काम करनेवाला मानें। ईश्वरीय नियम एक या दो दलको नहीं, सभी मनुष्योंको सर्वत्र सबसे अधिक सुख पहुंचानेवाला है।

सरकार और मालदार आदमी श्रमजीवियोंका रक्त-शोषण न कर सकें, इसके लिये यह आवश्यक है कि श्रमजीवी आत्म-शुद्धि करें। शरीरकी अशुद्धतासे जिस तरह मैल और मैलसे कीड़े उत्पन्न होकर मनुष्यका शरीर जर्जरित कर देते हैं, उसी तरह आत्माकी शुद्धिके अभावमें स्वार्थी मनुष्योंकी सृष्टि होती है जो समाजका सब सुख छीन लेते हैं। श्रमजीवियोंकी दुर्दशासे छुटकारेका उपाय एक ही है—वे आत्मशुद्धि करें। इस आत्म-शुद्धिके लिये उन्हें उन अनेक नियमोंका पालन करनेकी आवश्यकता नहीं, जो स्वार्थ-साधनके लिये निर्बलोंको बन्धनमें डाले हुए हैं। श्रमजीवियोंको परमेश्वर और उसके एक नियममें विश्वास होना चाहिये। इसीसे उनका उद्धार हो सकेगा।

शिक्षित और अशिक्षित सभी श्रमजीवी अपनी वर्तमान दुर्दशा और सामाजिक अत्याचारकी शिकायत किया करते हैं। परन्तु इसपर भी दोनोंमेंसे यदि किसीको ऐसा सुभीता कर दिया जाये कि वह और आदमियोंकी अपेक्षा सस्ती चीजें तैयार करने लगे,

तो वह उस सुभीतेको स्वीकार कर लेगा चाहे उसके अन्य सैक हजारों भाई उसके कारण भले ही बर्बाद हो जायें। यदि दोनोंमें किसीको किसी मालदार आदमीके यहां बढ़िया नौकरी मिल हो, तो वह तुरन्त स्वीकार कर लेगा चाहे उसे उस उच्च पद रहकर अपने भाइयोंको सताना ही क्यों न पड़े। यदि किसी जमीन खरीदने या मजूर लगाकर काम करानेका मौका मिले, हजारमें ९९९ आदमी ऐसे मिलेंगे जो बिना किसी विचारके इ बातका समर्थन करेंगे कि जमीन रखना कोई बुरा काम न और वह जमींदारों तथा मालदार आदमियोंकी तरह या उ भी ज्यादा कड़ाई करनेके लिये तैयार हो जायेगा।

सेनामें भर्ती होना या सेनाके व्ययके लिये कर चुकाना ब बुरा काम है। परन्तु बहुत थोड़े आदमी ऐसे मिलेंगे जो अ भाइयोंको गुलामीमें न पड़ने देनेके लिये ऐसा कर चुकाना सेनामें भर्ती होना बुरा समझते हों। इन कामोंको तो लं साधारण समझकर किया ही करते हैं।

क्या कभी सम्भव है कि जिस समाजमें इस प्रकारके लं हैं, उसकी दुर्दशाका कभी अन्त होगा?

श्रमजीवी अपनी दुर्दशाके लिये जमींदारों, धनवानों अ सरकारोंको कोसा करते हैं, परन्तु सभी या अधिकांश श्रमजी बड़े नहीं तो छोटे रूपमें जमींदार, धनवान या सरकार बने हैं और वे जिन तकलीफोंकी शिकायत किया करते हैं, उन जड़ स्वयं ही हैं।

एक आदमी गावसे आकर किसी रईसके यहा अपने गाव-वाले सईसकी सिफारशपर नौकरी पा जाता है, परन्तु जब वह सुनता है कि एक आदमी बिना किसी कारण नौकरीपरसे हटा दिया गया है तो वह उस रईसके यहां नौकरी करना अस्वीकार करता है। वह नहीं चाहता कि दूसरे आदमीके साथ ऐसा वर्ताव किया जाये जैसा वर्ताव वह अपने साथ नही चाहता। इसी तरह एक बडे परिवारवाला किसान किसी जमींदारके यहा ऊंचा वेतन पाकर नौकरी स्वीकार कर लेता है, परन्तु जब वह देखता है कि उसे अपने मालिकके लाभके लिये गरीब किसानोंके पशु पकडने पडते हैं जो जमींदारके खेतोंमें चले आये हैं या उन स्त्रियोंको पकडना होता है जो जलानेके लिये लकडिया एकत्र करने आयी हैं या मजूरोंकी मजूरी कमकर उनसे ज्यादा काम लेना पडता है, तो वह अपनी अन्तरात्माके विरुद्ध काम करना पसन्द न कर नौकरी छोड देता है। उसे नौकरी छोडनेमें अपने परिवारके भूखो मरनेका भय है, परन्तु वह इसकी कुछ भी परवा नहीं करता। वह ऐसा काम करने लग जाता है जो उसे कम लाभ पहुचाता है, परन्तु उसके अन्त:-करणके अनुकूल है। इसी तरह एक सैनिकको अपनी पल्टनके साथ पहुचकर हडताल करनेवाले मजूरोंपर गोली चलानी है। वह गोली चलानेकी आज्ञा न मानकर कष्टमें पडता है। ये सब आदमी अपने अन्त करणके अनुसार काम करते हैं और इस नियमका पालन करते हैं कि दूसरोंके साथ कभी ऐसा

वर्ताव न करो जिस वर्तावकी आशा तुम दूसरोंसे नहीं रखते।

दूसरी तरफ यदि कोई आदमी अपनी चीजका दाम इसलिये घटा रहा है कि उसकी चीज जल्दी बिक जाये—उसे इस बातकी चिन्ता नहीं कि उसके इस कामसे दूसरे भाइयोंकी हानि होगी, तो समाजको कष्ट पहुंचानेवाली बुराईका अन्त नहीं हो सकता। यदि कोई श्रमजीवी अपने स्वामीके साथ मिल जाता है और उसे मदद देने लग जाता है, तो भी बुराईका अन्त नहीं हो सकता। जो सेनामें भर्ती होकर अपने भाइयोंको गोलीसे मारनेके लिये तैयार है, वह भी दुर्दशाका कारण है। सेनामें भर्ती होनेवाला कह सकता है कि मुझे तो इस बातका पता नहीं कि मैं किसे कब और कहां मारूंगा। वह यह बात भले ही न जाने, परन्तु यह तो अवश्य ही जानता है कि सेनाका काम मारना है।

श्रमजीवियोंकी दुर्दशाका उसी समय अन्त हो सकता है जब कि वे समझ लें कि हमारे भाइयोंका किसी तरह अहित न होना चाहिये। जिस तरह लोग उपवासके दिनोंमें नमक नहीं खाते, मुर्दोंका अन्तिम संस्कार करानेपर स्नान करते हैं उसी तरह श्रमजीवियोंको साधारण नियमोंकी परवा न कर परस्परकी सहायताका नियम मानते हुए धनवानोंकी नौकरीसे जहांतक सम्भव हो अलग रहना चाहिये, कभी कम मजूरी स्वीकारकर काम न करना चाहिये, धनवानोंकी सहायतासे अपने भाइयोंकी अपेक्षा अपना विशेष हित न करना चाहिये और

सबसे जरूरी बात यह है कि किसी तरह भी सरकारके भयप्रदर्शनके काममें भाग न लेना चाहिये यानी पुलिस, चुङ्गी और सेनाकी नौकरी न स्वीकार करनी चाहिये।

इस प्रकार अपने भाव धार्मिक बनाकर काम करते हुए श्रमजीवी अपना उद्धार अनेक अत्याचारोंसे कर सकते हैं।

अगर कोई श्रमजीवी किसी विशेष लाभकी इच्छासे या भयवश अपने अन्तःकरणकी प्रेरणाकी परवा न कर हत्यारोंके दलमें यानी सैनिकोंमें शामिल हो जाता है, यदि वह अपने सुखके लिये अपने भाइयोंकी आय घटानेके लिये तैयार हो जाता है, यदि वेतनके लोभसे स्वामीका साथ देने लग जाता है, तो उसे अपनी दुर्दशाके लिये शिकायत करनेका कोई कारण नहीं।

मनुष्य जिस किसी अवस्थामें है, वह अपने ही कारण है। वह अपने आप ही अत्याचारी या अत्याचार-पीड़ित बनता है।

इसके विरुद्ध कोई बात नहीं हो सकती। ईश्वर और उसके अटल सिद्धान्तमें विश्वास न करनेके कारण वह अपने अल्प जीवनमें सबसे अधिक सुख चाहता है। चाहे उसकी इस तृष्णासे दूसरोंकी कुछ भी दुर्दशा हो। जब मनुष्य दूसरोंकी परवा न कर अपने लिये सबसे अधिक सुखकी इच्छा करने लग जाता है, तब अवश्य ही ऐसा सामाजिक सङ्गठन तैयार हो जाता है जिसके सिरेपर तो अत्याचारी रहते हैं और नीचे अत्याचारपीड़ितोंका झुण्ड दिखाई देता है।

दूसरा अध्याय।

हमारे जमानेकी गुलामी।

(१)

अङ्कगणनाने यह बात स्पष्ट कर दी है कि उच्च श्रेणीके मनुष्योंकी आयु औसतसे ५५ वर्षकी होती है, तो स्वास्थ्यनाशक काम करनेवाले मजूरोंकी आयु केवल २९ वर्षकी ही होती है। यह बात ध्यानमें रखकर हम लोग यदि पशु नहीं बन गये हैं, तो श्रमजीवियोंसे ऐसा काम लेना छोड़ दें जो उनके प्राणतक ले लेता है। जो मनुष्योंसे इस प्रकार काम लेते हैं, उन्हें प्राणोंसे वञ्चित करते हैं, उन्हें एक मिनटके लिये भी सुखकी नींद न आनी चाहिये। असल बात यह है कि मालदार आदमी चाहे वे उदार हों या मनुष्यताके उपासक हों, मजूरोंसे लगातार काम लेकर धनवान बनना चाहते हैं यद्यपि इन दीन मनुष्योंके प्रति ही नहीं, पशुओंपर भी करुणाभाव प्रकट किया करते हैं। हम ऐसा करते हुए दुखी नहीं होते। यदि हम सुनते हैं कि कुछ रेलवे मजूर लगातार ३७ घण्टे काम करते हैं और गन्दे स्थानोंमें रहते हैं, तो हम तुरन्त ही इन्सपेक्टर भेजकर उन्हें ज्यादा काम करनेसे रोक देते हैं। रेलवे कर्मचारियोंसे केवल १२ घण्टे काम करनेको कहते हैं यद्यपि यह बात भली भांति जानते हैं कि कम समयतक

काम करनेसे वे कम मजूरी पायेंगे और अपना पेट भी न भर सकेंगे। रेलवे कम्पनीको बाध्य किया जाता है कि वह मजूरोंके लिये स्वास्थ्यप्रद निवासस्थान बना दे। इसके बाद हम बड़ी शान्तिके साथ रेलद्वारा माल मंगाने और भेजने लगते हैं और रेलवे कम्पनी-के लाभमें भाग बटाते तथा मकानोंका किराया वसूल करते हैं।

हम यह बात जानते हैं कि रेशमके कारखानोंमें स्त्रिया और लडकिया अपने परिवारोंसे दूर रहकर अपना और अपनी सन्तान-का जीवन नष्ट किया करती हैं। आधी धोबिनें जो हमारे कपडे धोकर ठीक करती हैं और वे स्त्रियां जो छापाखानोंमे काम करती हैं, क्षयरोगमे ग्रसित हो जाती हैं। हम यह सब सुनकर दयापूर्वक अपने कन्धे हिला देते हैं और कह दिया करते हैं कि हमें यह सुनकर बडा दुःख हुआ, परन्तु हम रेशमी कपडे पह-नते रहते हैं, धुले हुए कपडे काममें लाया करते हैं और किताबें अखबार पढा करते हैं। हम दुकानोंमें रहनेवाले कर्मचारियों और स्कूलोंमें पढनेवाले अपने बच्चोंके, ज्यादा घण्टोंके लिये आन्दोलन मचाते हैं और गाडीवानोंसे कहते हैं कि घोडोंको ज्यादा समयतक न जोतें और कसाईखानोंमें जाकर ऐसा प्रबन्ध करते हैं कि पशु हत्याके समय बहुत ही कम कष्टका अनुभव करे, परन्तु हम उन करोडों मजूरोंके प्रति कितने उदासीन हैं जो हमारी चारो ओर काम करते हुए धीरे-धीरे दुःखपूर्वक मृत्युको प्राप्त होते रहते हैं! हम उन बेचारोंकी मिहनतसे बडे मजेसे लाभ उठाया करते हैं।

(२)

विज्ञानद्वारा वर्त्तमान जीवनका समर्थन।

लोगोंमें श्रमजीवियोंके कष्टोंके सम्बन्धमें उदासीनताके जो भाव हैं उसका यही कारण है कि लोग जब कोई बुरा काम करने लग जाते हैं, तो जीवनका ऐसा नियम तैयार कर सामने रख देते हैं जिससे उनका बुरा काम बुरा ही न मालूम हो। वे कह दिया करते हैं कि हम उन नियमोंको तो बदल नहीं सकते जो परिवर्तनशील नहीं हैं। प्राचीन कालमें लोग यह सिद्धान्त बनाये बैठे थे कि जो कष्ट भोग रहे हैं, वे ईश्वरके अटल नियमके अनुसार कष्टमय अवस्थामें हैं और मनुष्य उनका कुछ भी सुधार नहीं कर सकता। ईश्वरीय नियमके कारण कुछ मनुष्य बिना काम किये हुए ही दूसरोंकी मिहनतसे लाभ उठाकर चैनकी बंशी बजा रहे हैं। तरह तरहके धार्मिक सिद्धान्त रचे गये और कहा गया कि ईश्वरने ही स्वामी और सेवकको जन्म दिया है, इसलिये दोनोंको अपने अपने जीवनसे सन्तुष्ट रहना चाहिये। यह भी कहा जाता था कि सेवक अच्छी सेवा करते हुए अगले जन्ममें सुख पायेंगे। साथ ही इस बातपर भी जोर दिया जाता था कि सेवकोंको अपना काम न छोड़ना चाहिये। यदि स्वामियोंकी कृपा होगी, तो उनका जीवन सुखी हो सकता है। जब गुलामीकी प्रथा उठ गयी तो इस नियमका प्रचार किया गया कि ईश्वरकी इच्छा है कि कुछ थोड़ेसे आदमी धन रखें और उस धनको अच्छे कामोंमें व्यय

करें। इसलिये इस बातमें कोई बुराई नहीं कि कुछ थोड़ेसे आदमी धनी और ज्यादा आदमी गरीब हैं।

इन सिद्धान्तोंने कुछ समयतक अपना काम किया। अमीर तो उनसे सन्तुष्ट होते ही, परन्तु गरीब भी सन्तुष्ट रखे गये। कालान्तरमें इन सिद्धान्तोंकी पोल खुल गयी। गरीबोंको उनसे असन्तोष हुआ। तब नये सिद्धान्तोंकी आवश्यकता हुई। ठीक समयपर वे भी रच डाले गये। नये सिद्धान्त, विज्ञान और अर्थशास्त्रके आधारपर बनाये गये और कहा गया कि श्रमविभाग होना चाहिये और श्रमजीवियोंके श्रमके फलका तमाम मनुष्योंमें विभाग होना चाहिये। इन नये सिद्धान्तोंके अनुसार कहा गया कि गरीबोंको परिश्रम करना होगा, क्योंकि उनके पास धन नहीं और यह परिश्रम मानुषिक जीवनके अटल नियमके अनुसार परम आवश्यक है। बहुत दिनोंतक जब गुलामीकी प्रथा जारी थी, ईश्वरको यह बात अच्छी लगती थी कि एक आदमी दूसरे आदमीको उसे कोई जड़ पदार्थ समझकर अपने वशमें रखे। निर्दयताका पक्षसमर्थन करनेवाले सिद्धान्तकी पीछेसे निन्दा होने लगी और उसकी सत्यतापर लोगोंका विश्वास न रहा।

इसी तरह आजकल जो यह अटल नियम बनाया गया है कि कुछ लोगोंको तो अपने पास धन रखना होगा और कुछको तमाम जीवन परिश्रम करना होगा और वह धन बढ़ाना होगा, कुछ थोड़ेसे आदमियोंको अधिकांश मनुष्योंके प्रति दयाशून्य

बना रहा है और जनसाधारणको उसकी सत्यताके सम्बन्धमें सन्देह होने लगा है।

(२)
कल-कारखाने।

श्रमजीवियोंके कष्टोंका यह कारण नहीं है कि पैसेवालोंके हाथमें तमाम कल-कारखाने हैं। उनके कष्ट उन कारणोंसे उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने उनको गांवोंसे भगाया है। दूसरी बात यह है कि मजूरोंके असली कष्ट कामके घण्टे कम करने, मजूरी बढ़ा देने या कालान्तरमें कल-कारखानोंको सार्वजनिक सम्पत्ति बना देनेसे दूर न होंगे। श्रमजीवियोंको इसलिये विशेष कष्ट नहीं कि उन्हें बहुत घण्टे काम करना पड़ता है। किसान हर रोज १८ और कभी ३६ घण्टे काम करते रहते हैं और बड़े प्रसन्न रहते हैं। उन्हें इसलिये भी कष्ट नहीं कि कम मजूरी मिलती है या कल-कारखानेपर उनका अधिकार नहीं। उनका कष्ट इस बातमें है कि उन्हें अस्वाभाविक ढङ्गसे खराब स्थानोंमें काम करना पड़ता है। इससे उनके स्वास्थ्यपर बड़ा आघात होता है। उन्हें दूसरोंकी इच्छानुसार जबर्दस्ती काम करना पड़ता है और सबको एक साथ मिलकर रहना पड़ता है जो व्यभिचार बढ़ानेवाली बात है।

इधर मजूरोंके कामके घण्टे कम हो गये हैं और उनकी मजूरी भी बढ़ गयी है, परन्तु उनके कष्ट कम नहीं हुए। यह बात दूसरी है कि आजकल मजूर घड़ी लगाये, मुंहमें चुरट दबाये और

ाथमें शराबकी बोतल लिये देखे जाते हैं। ध्यान तो इस र
ना है कि क्या उनका स्वास्थ्य और नैतिक बल सुधरा है? से
धिक विचारणीय बात यह है कि क्या उन्हें स्वतन्त्रता मिली है?

हर जगह कल-कारखानोंमें काम करनेवालोंका स्वास्थ्य
सानोंसे खराब है। उनकी आयु कम होती है। उनका
तिक पतन हो रहा है। इसका कारण यही है कि वे ऐसे
नोंसे हटा दिये गये हैं जो नैतिक चरित्रकी रक्षा किया करते
। श्रमजीवी पारिवारिक जीवन व्यतीत नहीं कर सकते और
उनका काम उतना स्वतन्त्र, आनन्ददायक, भिन्न और स्वास्थ्य-
है, जितना कि कृषिकार्य है।

अर्थशास्त्रवादियोंका यह कहना ठीक है कि कामके घण्टे कम
जाने, मजूरी बढ़ जाने और कल-कारखानोंकी स्वास्थ्यप्रद
स्था हो जानेसे पहलेकी अपेक्षा मजूरोंका स्वास्थ्य और नैतिक
रित्र सुधरा है। यह भी ठीक है कि इधर किसानोंकी अपेक्षा
तूरोंकी बाहरी अवस्था कहीं अच्छी है। परन्तु यह इसीसे है कि
रकार और समाज किसानोंकी कुछ भी परवा न कर कार-
नोंके मजूरोंकी ओर विशेष ध्यान देनेमें समर्थ हुई हैं।

यदि श्रमजीवियोंकी अवस्था कुछ स्थानोंमें किसानोंसे अच्छी
है, तो इससे स्पष्ट है कि मनुष्य दूसरेके जीवनको अनेक
पम बनाकर दुखी कर सकता है और ऐसी कोई भी अस्वा-
विक और बुरी अवस्था नहीं जिसके अनुकूल मनुष्य अपनेको
रे धीरे न बना लेता हो।

था। कारखानेके मजूरों और नगरोंमें काम करनेवालोंकी अवस्था इसलिये कष्टमय नहीं कि वे कम मजूरी पाते और ज्यादा घण्टे काम करते हैं। शहरों और कारखानोंमें उन्हें अस्वाभाविक जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उनकी स्वतन्त्रता छिन जाती है और उन्हें दूसरोंकी इच्छासे लगातार एकसा ही काम करना पड़ता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मजूरोंकी अवस्था कम घण्टे काम करने, ज्यादा मजूरी पाने और कारखानोंको अपने अधिकारमें कर लेनेसे भी नहीं सुधर सकती। जिन कारणोंने उन्हें प्राकृतिक जीवनसे वञ्चितकर शहरोंमें भेजा है, उन्हें दूर करनेसे ही श्रमजीवी सुखी बन सकते हैं।

इङ्गलैण्ड, बेलजियम और जर्मनीके श्रमजीवी कई पीढ़ियोंसे नगरोंमें काम कर रहे हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वे जो काम बहुत दिनोंसे कर रहे हैं उससे प्रसन्न या सुखी हैं। उनके पूर्वज कृषक जीवन कई कारणोंसे त्यागकर शहरोंमें आनेके लिये बाध्य हुए थे। वे जबर्दस्ती जमीनसे वञ्चित कर दिये गये थे। इसके बाद उन्हें भाड़ेके टट्टू बनानेके लिये बड़ी कड़ी सजाएं दी गयीं। जलते हुए लोहेसे वे जलाये गये और गुलाम बननेके लिये बाध्य किये गये। इससे उन कारणोंका पता लग जाता है जो किसानोंको शहरोंमें भेजनेवाले बने और अब भी बन रहे हैं।

अर्थशास्त्रका उद्देश्य यह बताया जाता है कि उसे उन कारणोंको दूर नहीं करना है जिनके वशीभूत होकर गरीब

आदमी गावोंको छोड़कर शहरोंमें आये। उसका उद्देश्य नगरमें आये हुए लोगोंका जीवन सुधारना है। इस तरह अर्थशास्त्री यह बात माने बैठे हुए हैं कि श्रमजीवियोंका शहरोंमें रहना तो छूट ही नहीं सकता और न यह रास्ता ही बन्द हो सकता है जिससे और भी किसानोंके शहरोंमें चले आनेकी सम्भावना है।

यद्यपि बड़े बड़े ऋषि-मुनियों और कवियोंने कृषि-जीवन बड़ा आनन्दमय और सुखदायक बताया है और श्रमजीवी अब भी इसे अधिकतर पसन्द करते हैं, परन्तु अर्थशास्त्री यही कह रहे हैं कि सभी किसानोंको कारखानोंके मजूर बनना पड़ेगा। किसानका जीवन कारखानेवालोंके जीवनसे कहीं अधिक आनन्दमय और सुखदायक है। किसान स्वतन्त्र है। वह जब चाहे परिश्रम करे और जब चाहे विश्राम कर सकता है। कारखानेवालोंको लगातार अपनी इच्छाके विपरीत एक ही काम करना पड़ता है। मजूर यद्यपि कारखानेके स्वामी ही क्यों न बना दिये जायें, परन्तु उनकी परतन्त्रता दूर नहीं हो सकती; क्योंकि उन्हें कल-पुर्जोंके वशमें रहना ही होगा। कृषि-जीवन इतना उत्तम होनेपर भी अर्थशास्त्री यही कहा करते हैं कि जो लोग गांवोंसे शहरोंमें चले आये हैं, उनकी कोई हानि नहीं हुई। किसान अपनी इच्छासे शहरोंमें आते हैं और आनेकी चेष्टा किया करते हैं।

(४)

साम्यवादी कहते हैं कि कालान्तरमें कल-कारखाने सार्वजनिक सम्पत्ति बन जायेंगे। उनपर पैसेवालोंका जो अधिकार

गा कारखानेके मजूरों और नगरोंमें काम करनेवालोंकी अवस्था इसलिये कष्टमय नहीं कि वे कम मजूरी पाते और ज्यादा घण्टे काम करते हैं। शहरों और कारखानोंमें उन्हें अस्वाभाविक जीवन व्यतीत करना पड़ता है। उनकी स्वतन्त्रता छिन जाती है और उन्हें दूसरोंकी इच्छासे लगातार एकसा ही काम करना पड़ता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि मजूरोंकी अवस्था कम घण्टे काम करने, ज्यादा मजूरी पाने और कारखानोंको अपने अधिकारमें कर लेनेसे भी नहीं सुधर सकती। जिन कारणोंने उन्हें प्राकृतिक जीवनसे वञ्चितकर शहरोंमें भेजा है, उन्हें दूर करनेसे ही श्रमजीवी सुखी बन सकते हैं।

इङ्गलैण्ड, बेलजियम और जर्मनीके श्रमजीवी कई पीढ़ियोंसे नगरोंमें काम कर रहे हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वे जो काम बहुत दिनोंसे कर रहे हैं उससे प्रसन्न या सुखी हैं। उनके पूर्वज कृषक जीवन कई कारणोंसे त्यागकर शहरोंमें आनेके लिये बाध्य हुए थे। वे जबर्दस्ती जमीनसे वञ्चित कर दिये गये थे। इसके बाद उन्हें भाड़ेके टट्टू बनानेके लिये बड़ी कड़ी सजाएं दी गयीं। जलते हुए लोहेसे वे जलाये गये और गुलाम बननेके लिये बाध्य किये गये। इससे उन कारणोंका पता लग जाता है जो किसानोंको शहरोंमें भेजनेवाले बने और अब भी बन रहे हैं।

अर्थशास्त्रका उद्देश्य यह बताया जाता है कि उसे उन कारणोंको दूर नहीं करना है जिनके वशीभूत होकर गरीब

बुद्धिमान् आदमी और उनके शिष्य जो पैसेवाले हैं, भला इस भविष्यवाणीको क्यों न मानें। उनके सामने तो बड़ी जटिल समस्या है। या तो वे यह भविष्यवाणी स्वीकार करें या यह बात मानें कि हम रेलों, आरामकी चीजोंसे जो लाभ उठा रहे हैं, वे इन मनुष्योंके परिश्रमका फल हैं जो अपनी जानें भी गंवा देते हैं। जो लोग दूसरोंकी जानें लेनेवाली चीजोंसे लाभ उठाते हैं, वे या तो अपनेको सम्मानित पुरुष कहना छोड़ दें या यह कहने लगें कि जो कुछ हो रहा है सबके ही लाभके लिये हो रहा है। यह ईश्वरके अटल नियमोंके अनुकूल भी है। वैज्ञानिक और शिक्षित मनुष्य किस कारणसे यह बात कहा करते हैं कि श्रमजीवी ग्रामोंका सुखी, आनन्ददायक और प्राकृतिक जीवन त्यागकर स्वेच्छासे शहरोंमें चले आते हैं, यह अब भली भांति स्पष्ट हो जाता है। श्रमजीवी कृषिजीवन त्यागकर जिस समय कल-कारखानोंमें मजूरी करने लग जाते हैं, वे अपने शरीर और आत्मा दोनोंका ही विनाश करते हैं फिर भला वे स्वेच्छासे ऐसा काम क्यों करने लगे। असल बात यही है कि स्वार्थी अपने उच्च सिद्धान्तोंकी रक्षाके लिये लम्बी चौड़ी बातें बना लिया करते हैं।

(५)

साम्यवादकी निस्सारता।

यदि यह निर्मूल बात हो मान ली जाये कि गावोंकी अपेक्षा शहरोंमें रहना अच्छा है और अपनी इच्छाके विपरीत कल-कार-

है, वह न रहेगा। परन्तु वे कहते हैं कि कारखानोंमें काम अबकी तरह ही होता रहेगा। पैसेवाले भी कुछ काम करेंगे, परन्तु वे प्रबन्ध करनेवाले या हस्तकौशल दिखानेवाले बनेंगे। जमीनके नीचे घुसकर आग और धुएंके सामने कौन काम करेगा, इसका वे या तो कुछ उत्तर ही नहीं देते या कह देते हैं कि इतना सुधार हो जायेगा कि ये काम भी आनन्ददायक मालूम होंगे। इस तरह साम्यवादी हवाई किले बना रहे हैं।

उनका कथन है कि सभी श्रमजीवी अपने अपने संघ बनाकर हड़तालें कर और शासनमें हाथ बटाकर कल-कारखानोंपर अधिकार जमा लेंगे। जमीन भी उन्हींके अधिकारमें आ जायेगी। फिर वे इतना बढ़िया भोजन, वस्त्र और छुट्टियोंके दिनोंमें आनन्द पायेंगे कि वे नगरमें रहना ही पसन्द करेंगे। वे पक्की इमारतों और धुएंदार निवासस्थानोंको ग्रामीण स्थानोंसे अधिक पसन्द करने लग जायेंगे। वे ग्रामके स्वतन्त्र और आनन्ददायक व्यवसायकी अपेक्षा कारखानेके परतन्त्र और लगातार समान रहनेवाले कामको ज्यादा पसन्द करेंगे।

यह भविष्यकथन उसी तरहका है, जिस तरह धर्माचार्य कहा करते थे कि किसानोंको बहुत बढ़िया स्वर्ग मिलेगा, क्योंकि वे यहां बड़ा परिश्रम कर रहे हैं। जिस तरह पुराने जमानेमें समाजके बुद्धिमान् मनुष्य भी धर्माचार्योंकी बातोंपर विश्वास कर लिया करते थे, उसी तरह आजकलके अर्थशास्त्रियोंका भविष्यकथन भी बुद्धिमान् मनुष्योंद्वारा भी मान लिया जाता है।

गनी हैं और उनके तैयार करनेमें विशेष शक्ति भी नहीं लगायी गयी है, वे मालिकोंको लाभ पहुंचानेवाली तथा हमारे लिये सुखदायक हैं,इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी स्वतन्त्र समाजमें लोग बिना किसी दण्डप्रयोगके उन्हें तैयार करते रहेंगे। बहुतसे लोग बहुतसी चीजोंको हानिकारक समझेंगे। इन लोगोंसे किस तरह वे चीजें तैयार करायी जायेंगी ?

मान लिया जाये कि सब लोग ही कुछ चीजें बनानेके लिये सहमत हो गये, यद्यपि यह कल्पनामात्र ही है, तो यह बात कैसे तय होगी कि कौनसी चीज अन्य चीजोंकी अपेक्षा पहले बनायी जाये। बिजलीकी रोशनी करनेका पहले प्रबन्ध किया जायेगा या खेतोंके लिये नहरें निकालनेका काम पहले शुरू होगा। जब सभी श्रमजीवी स्वतन्त्र हैं, तब यह प्रश्न कैसे हल होगा कि कौन आदमी कौनसा काम करे। सब लोग घास एकत्र करना और उसे सुखाना पसन्द न करेंगे, न धुएंके पास रहकर काम करना या जमीनके नीचे जाकर काम करना चाहेंगे। लोगोंको कार्यविभागके सम्बन्धमें किस तरह सहमत कराया जायेगा ? प्रश्न बातें बनाकर भले ही हल कर लिया जाये, परन्तु यह वास्तवमें क्रियात्मक दृष्टिसे हल नहीं हो सकता।

जिस समाजमें साम्यवादका प्रचार है और कल-कारखाने सामाजिक सम्पत्ति हैं, वहां उपर्युक्त कठिनाइयोंके सिवा एक सबसे बड़ी कठिनाई और भी उपस्थित होगी। कार्यविभागका परिमाण क्या होगा ? इस समय तो लोग पेट भरनेके लिये

खानोंमें काम करना स्वेच्छापूर्वक खेती करनेसे अच्छा है, तो अर्थशास्त्री जिस उद्देश्यकी ओर मनुष्योंको ले जाना चाहते हैं वह आदर्श ही परस्पर-विरोधी बातोंसे भरा हुआ है। आदर्श यह है कि नगरोंमें पहुंचकर श्रमजीवी जिस समय कल-कारखानोंके स्वामी बन जायेंगे, तो धनवानोंके समान वे भी सुख और आनन्द भोगने लग जायेंगे। वे सब बढ़िया वस्त्र पहनेंगे और अच्छे मकानोंमें रहेंगे। सब बिजलीसे प्रकाशित बढ़िया चमकदार सड़कोंपर सैर करेंगे। नाच-तमाशे देखेंगे, अखबार और पुस्तकें पढ़ेंगे तथा मोटरोंपर सवार होंगे। इन सब चीजोंको काममें लानेके पहले तैयार भी तो करना होगा। प्रश्न यह है कि ये सब चीजें यदि स्वयं श्रमजीवी तैयार करेंगे, तो प्रत्येक मनुष्य कितना और कौनसा काम करेगा।

जिस समाजमें किसी तरहकी कोई रुकावट नहीं, कोई धनी और कोई गरीब ही नहीं, उस समाजमें यह निर्णय कैसे किया जायेगा कि कौनसा वस्तुकी आवश्यकता है और वह कितनी चाहिये। लोगोंको इन चीजोंको तैयार करनेके लिये किस तरह कहा जायेगा, जब कि कुछ लोग ऐसे मिलेंगे जो किसी चीजको आवश्यक समझते होंगे और किसीको अनावश्यक मानते होंगे।

इस समय तो कल-पुर्जोंकी सहायतासे तथा कार्य-विभाग रहनेके कारण बड़ी किफायतके साथ बहुतसी चीजें भिन्न भिन्न प्रकारकी तैयार होती रहती हैं। ये चीजें कारखानेके स्वामियोंको फायदा पहुंचानेवाली हैं और हमें आराम पहुंचाती हैं। ये चीजें अच्छी

बनी हैं और उनके तैयार करनेमें विशेष शक्ति भी नहीं लगायी गयी है, वे मालिकोंको लाभ पहुंचानेवाली तथा हमारे लिये सुखदायक हैं,इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी स्वतन्त्र समाजमें लोग बिना किसी दण्डप्रयोगके उन्हें तैयार करते रहेंगे। बहुतसे लोग बहुतसी चीजोंको हानिकारक समझेंगे। इन लोगोंसे किस तरह वे चीजें तैयार करायी जायेंगी ?

मान लिया जाये कि सब लोग ही कुछ चीजें बनानेके लिये सहमत हो गये, यद्यपि यह कल्पनामात्र ही है, तो यह बात कैसे तय होगी कि कौनसी चीज अन्य चीजोंकी अपेक्षा पहले बनायी जाये। बिजलीकी रोशनी करनेका पहले प्रबन्ध किया जायेगा या खेतोंके लिये नहरें निकालनेका काम पहले शुरू होगा। जब सभी श्रमजीवी स्वतन्त्र हैं, तब यह प्रश्न कैसे हल होगा कि कौन आदमी कौनसा काम करे। सब लोग घास एकत्र करना और उसे सुखाना पसन्द न करेंगे, न धूपके पास रहकर काम करना या जमीनके नीचे जाकर काम करना चाहेंगे। लोगोंको कार्यविभागके सम्बन्धमें किस तरह सहमत कराया जायेगा ? प्रश्न बातें बनाकर भले ही हल कर लिया जाये, परन्तु यह वास्तवमें क्रियात्मक दृष्टिसे हल नहीं हो सकता।

जिस समाजमें साम्यवादका प्रचार है और कल-कारखाने सामाजिक सम्पत्ति हैं, वहां उपर्युक्त कठिनाइयोंके सिवा एक सबसे बड़ी कठिनाई और भी उपस्थित होगी। कार्यविभागका परिमाण क्या होगा ? इस समय तो लोग पेट भरनेके लिये

खानोंमें काम करना स्वेच्छापूर्वक खेती करनेसे अच्छा है, तो अर्थशास्त्री जिस उद्देश्यकी ओर मनुष्योंको ले जाना चाहते हैं वह आदर्श ही परस्पर-विरोधी बातोंसे भरा हुआ है। आदर्श यह है कि नगरोंमें पहुंचकर श्रमजीवी जिस समय कल-कारखानोंके स्वामी बन जायेंगे, तो धनवानोंके समान वे भी सुख और आनन्द भोगने लग जायेंगे। वे सब बढ़िया वस्त्र पहनेंगे और अच्छे मकानोंमें रहेंगे। सब बिजलीसे प्रकाशित बढ़िया चमकदार सड़कोंपर सैर करेंगे। नाच-तमाशे देखेंगे, अखबार और पुस्तकें पढ़ेंगे तथा मोटरोंपर सवार होंगे। इन सब चीजोंको काममें लानेके पहले तैयार भी तो करना होगा। प्रश्न यह है कि ये सब चीजें यदि स्वयं श्रमजीवी तैयार करेंगे, तो प्रत्येक मनुष्य कितना और कौनसा काम करेगा।

जिस समाजमें किसी तरहकी कोई रुकावट नहीं, कोई धनी और कोई गरीब ही नहीं, उस समाजमें यह निर्णय कैसे किया जायेगा कि कौनसा वस्तुकी आवश्यकता है और वह कितनी चाहिये। लोगोंको इन चीजोंको तैयार करनेके लिये किस तरह कहा जायेगा, जब कि कुछ लोग ऐसे मिलेंगे जो किसी चीजको आवश्यक समझते होंगे और किसीको अनावश्यक मानते होंगे।

इस समय तो कल-पुर्जोंकी सहायतासे तथा कार्य-विभाग रहनेके कारण बड़ी किफायतके साथ बहुतसी चीजें भिन्न भिन्न प्रकारकी तैयार होती रहती हैं। ये चीजें कारखानेके स्वामियोंको फायदा पहुंचानेवाली हैं और हमें आराम पहुंचाती हैं। ये चीजें अच्छी

भिमानियोंका कहना है कि न्याय चाहे रहे या नहीं, परन्तु सभ्यताकी रक्षा करो। वे अपने सिद्धान्तकी दुहाई ही नहीं देते, उसके अनुसार काम भी करते हैं। प्रत्येक चीज बदली जा सकती है, परन्तु वर्तमान सभ्यता नहीं, कल-कारखानोंकी धूम नहीं और दुकानोंमें बिकनेवाला सामान नहीं बदला जा सकता।

जो लोग धार्मिक हैं और सब भाइयों तथा पड़ोसियोंके साथ प्रेम करनेके पक्षपाती हैं, वे ऊपरके सिद्धान्तके विरुद्ध होंगे।

बिजलीकी रोशनी, रेल, तार और प्रदर्शिनिया अच्छी हैं और आमोद-प्रमोदका अन्य सामान भी अच्छा है, परन्तु वह सब धूलमें मिल जाये तो भी कुछ परवा नहीं यदि उसे तैयार करनेके लिये ९९ फीसदी आदमी दासतामें रहते हैं और हजारों आदमी अपने स्वास्थ्य और प्राणोंकी आहुति उनकी तैयारीके लिये दे डालते हैं। यदि बड़े बड़े शहरोंमें जैसे कि लन्दन और पेरिसमें बिजलीकी रोशनी करनी है या प्रदर्शिनी भवन तैयार करने हैं या शौकीनी इमारतें खड़ीकर उन्हें सजानेकी जरूरत है और इन सब कामोंके लिये थोड़ेसे भी मनुष्योंकी जानें जातीं, स्वास्थ्य नष्ट होता या आयु क्षीण होती है, तो शहरमें बिजलीकी जगह तेलके दीपक जलाना और अन्य चमक-दमक न रखना ठीक परन्तु इस धूमके लिये मनुष्योंको गुलाम बनाने या उनके लेनेकी आवश्यकता नहीं। यदि रेलगाड़ियोंके कारण हजारों आदमी मरते हैं, तो उन्हें न रखकर

होती रहेंगी जिस तरह आजकल जबर्दस्ती तैयार करायी जाती हैं। इस कल्पनाका यह अर्थ होगा कि गुलामी प्रथा उठ जानेके बाद भी उनके द्वारा लगाये हुए बाग-बगीचे और नाच-रङ्ग-भवन पहलेके समान ही बने रहेंगे। इसलिये साम्यवादियोंका आदर्श परस्पर-विरोधी बातोंसे भरा हुआ है। वह आदर्श स्वतन्त्र समाजमें तथा ऐसी अवस्थामें जब कि श्रमजीवी धनवानों-के समान ही जो चीज चाहते हैं, वह सब या कुछ कम पा जाते हैं, किस तरह पूरा हो सकता है।

(६)

सभ्यता या आजादी।

वैज्ञानिक मनुष्य तथा उनके चेले धनी आदमी इस युगको सभ्यताका काल कहते हैं और रेल, तार, फोटो, अस्पताल, बिजली तथा प्रदर्शिनियोंमें वे अपने सुखकी सारी सामग्री देखते हैं। वे स्वप्नमें भी इस बातकी कल्पना नहीं करना चाहते कि वर्तमान सभ्यताकी कुछ भी सामग्री जरा भी बदली जाये या उसपर आघात किया जाये। वे सब कुछ बदल डालनेको तैयार हैं, परन्तु इस सभ्यताको नष्ट नहीं करना चाहते। यह स्पष्ट है कि इस सभ्यताकी रक्षा तभी हो सकती है जब कि श्रमजीवी काम करनेके लिये बाध्य किये जायें। वैज्ञानिक इस सभ्यताके इतने बड़े पक्षपाती हैं कि इसे मानुषिक जीवनकी नियामत बताते हैं। प्राचीन सिद्धान्तवादियोंका सिद्धान्त था कि चाहे संसार नष्ट हो जाये, परन्तु न्याय करो। इन सभ्यता-

ुलामीसे उद्धार ।

जकल जबर्दस्ती तैयार करायी जात
ार्थ होगा कि गुलामी प्रथा उठ जानेसे
हुए बाग-बगीचे और नाच-रङ्ग-भवन
रहेंगे। इसलिये साम्यवादियोंका
तोंसे भरा हुआ है। वह आदर्श
अवस्थामें जब कि श्रमजीवी धनवानों-
हैं, वह सब या कुछ कम पा जाते
ा है।

६)

ा आजादी ।

होती रहेंगी जिस तरह आजकल जबर्दस्ती तैयार करायी जाती हैं। इस कल्पनाका यह अर्थ होगा कि गुलामी प्रथा उठ जानेके बाद भी उनके द्वारा लगाये हुए बाग-बगीचे और नाच-रङ्ग-भवन पहलेके समान ही बने रहेंगे। इसलिये साम्यवादियोंका आदर्श परस्पर-विरोधी बातोंसे भरा हुआ है। वह आदर्श स्वतन्त्र समाजमें तथा ऐसी अवस्थामें जब कि श्रमजीवी धनवानोंके समान ही जो चीज चाहते हैं, वह सब या कुछ कम पा जाते हैं, किस तरह पूरा हो सकता है।

(६)

सभ्यता या आजादी।

वैज्ञानिक मनुष्य तथा उनके चेले धनी आदमी इस युगको सभ्यताका काल कहते हैं और रेल, तार, फोटो, अस्पताल, बिजली तथा प्रदर्शिनियोंमें वे अपने सुखकी सारी सामग्री देखते हैं। वे स्वप्नमें भी इस बातकी कल्पना नहीं करना चाहते कि वर्तमान सभ्यताकी कुछ भी सामग्री जरा भी बदली जाये या उसपर आघात किया जावे। वे सब कुछ बदल डालनेको तैयार हैं, परन्तु इस सभ्यताको नष्ट नहीं करना चाहते। यह स्पष्ट है कि इस सभ्यताकी रक्षा तभी हो सकती है जब कि श्रमजीवी काम करनेके लिये बाध्य किये जायें। वैज्ञानिक इस सभ्यताके इतने बड़े पक्षपाती हैं कि इसे मानुषिक जीवनकी नियामत बताते हैं। प्राचीन सिद्धान्तवादियोंका सिद्धान्त था कि चाहे संसार नष्ट हो जाये, परन्तु न्याय करो। इन सभ्यता-

मिमानियोंका कहना है कि न्याय चाहे रहे या नहीं, परन्तु सभ्यताकी रक्षा करो। वे अपने सिद्धान्तकी दुहाई ही नहीं देते, उसके अनुसार काम भी करते हैं। प्रत्येक चीज बदली जा सकती है, परन्तु वर्तमान सभ्यता नहीं, कल-कारखानोंकी धूम नहीं और दुकानोंमें बिकनेवाला सामान नहीं बदला जा सकता।

जो लोग धार्मिक हैं और सब भाइयों तथा पड़ोसियोंके साथ प्रेम करनेके पक्षपाती हैं, वे ऊपरके सिद्धान्तके विरुद्ध होंगे।

बिजलीकी रोशनी, रेल, तार और प्रदर्शिनियां अच्छी हैं और आमोद-प्रमोदका अन्य सामान भी अच्छा है, परन्तु वह सब धूलमें मिल जाये तो भी कुछ परवा नहीं यदि उसे तैयार करनेके लिये ६६ फीसदी आदमी दासतामें रहते हैं और हजारों आदमी अपने स्वास्थ्य और प्राणोंकी आहुति उनकी तैयारीके लिये दे डालते हैं। यदि बड़े बड़े शहरोंमें जैसे कि लन्दन और पेरिसमें बिजलीकी रोशनी करनी है या प्रदर्शिनी-भवन तैयार करने हैं या शौकीनी इमारतें खड़ीकर उन्हें सजानेकी जरूरत है और इन सब कामोंके लिये थोड़ेसे भी मनुष्योंकी जानें जातीं, स्वास्थ्य नष्ट होता या आयु क्षीण होती है, तो शहरमें बिजलीकी जगह तेलके दीपक जलाना और अन्य चमक-दमक न रखना ठीक है, परन्तु इस धूमके लिये मनुष्योंको गुलाम बनाने या उनके प्राण लेनेकी आवश्यकता नहीं। यदि रेलगाड़ियोंके कारण हर साल हजारों आदमी मरते हैं, तो उन्हें न रखकर बैलगाड़ियोंसे काम

होती रहेंगी जिस तरह आजकल जवर्दस्ती तैयार करायी जाती हैं। इस कल्पनाका यह अर्थ होगा कि गुलामी प्रथा उठ जानेके वाद भी उनके द्वारा लगाये हुए वाग-वगीचे और नाच-रङ्ग-भवन पहलेके समान ही बने रहेंगे। इसलिये साम्यवादियोंका आदर्श परस्पर-विरोधी वातोंसे भरा हुआ है। वह आदर्श स्वतन्त्र समाजमें तथा ऐसी अवस्थामें जव कि श्रमजीवी धनवानों के समान ही जो चीज चाहते हैं, वह सव या कुछ कम पा जाते हैं, किस तरह पूरा हो सकता है।

(६)

सभ्यता या आजादी।

वैज्ञानिक मनुष्य तथा उनके चेले धनी आदमी इस युगको सभ्यताका काल कहते हैं और रेल, तार, फोटो, अस्पताल, विजली तथा प्रदर्शिनियोंमें वे अपने सुखकी सारी सामग्री देखते हैं। वे स्वप्नमें भी इस वातकी कल्पना नहीं करना चाहते कि वर्तमान सभ्यताकी कुछ भी सामग्री जरा भी वदली जाये या उसपर आघात किया जाये। वे सव कुछ वदल डालनेको तैयार हैं, परन्तु इस सभ्यताको नष्ट नहीं करना चाहते। यह स्पष्ट है कि इस सभ्यताकी रक्षा तभी हो सकती है जब कि श्रमजीवी काम करनेके लिये वाध्य किये जायें। वैज्ञानिक इस सभ्यताके इतने वड़े पक्षपाती हैं कि इसे मानुषिक जीवनकी नियामत वताते हैं। प्राचीन सिद्धान्तवादियोंका सिद्धान्त था कि चाहे संसार नष्ट हो जाये, परन्तु न्याय करो। इन सभ्यता-

मिमानियोंका कहना है कि न्याय चाहे रहे या नहीं, परन्तु सभ्यताकी रक्षा करो। वे अपने सिद्धान्तकी दुहाई ही नहीं देते, उसके अनुसार काम भी करते हैं। प्रत्येक चीज बदली जा सकती है, परन्तु वर्तमान सभ्यता नहीं, कल-कारखानोंकी धूम नहीं और दुकानोंमें बिकनेवाला सामान नहीं बदला जा सकता।

जो लोग धार्मिक हैं और सब भाइयों तथा पड़ोसियोंके साथ प्रेम करनेके पक्षपाती हैं, वे ऊपरके सिद्धान्तके विरुद्ध होंगे।

बिजलीकी रोशनी, रेल, तार और प्रदर्शिनियां अच्छी हैं और आमोद-प्रमोदका अन्य सामान भी अच्छा है, परन्तु यह सब धूलमें मिल जाये तो भी कुछ परवा नहीं यदि उसे तैयार करनेके लिये ९९ फीसदी आदमी दासतामें रहते हैं और हजारों आदमी अपने स्वास्थ्य और प्राणोंकी आहुति उनकी तैयारीके लिये दे डालते हैं। यदि बड़े बड़े शहरोंमें जैसे कि लन्दन और पेरिसमें बिजलीकी रोशनी करनी है या प्रदर्शिनी-भवन तैयार करने हैं या शौकीनी इमारतें खड़ीकर उन्हें सजानेकी जरूरत है और इन सब कामोंके लिये थोड़ेसे भी मनुष्योंकी जानें जातीं, स्वास्थ्य नष्ट होता या आयु क्षीण होती है, तो शहरमें बिजलीकी जगह तेलके दीपक जलाना और अन्य चमक-दमक न रखना ठीक है, परन्तु इस धूमके लिये मनुष्योंको गुलाम बनाने या उनके प्राण लेनेकी आवश्यकता नहीं। यदि रेलगाड़ियोंके कारण हर साल हजारों आदमी मरते हैं, तो उन्हें न रखकर बैलगाड़ियोंसे काम

चलाना ठीक है। हाथसे जमीन जोतना, बोना ठीक है, कल-पुर्जोंसे काम लेनेकी जरूरत नहीं यदि वे आदमियोंके प्राण लेते हैं। सच्चे सभ्यताभिमानी मनुष्यको संसार त्यागकर न्यायकी रक्षा करनी चाहिये न कि सभ्यताके लिये न्यायका गला घोटना चाहिये।

लाभदायक सभ्यताको नष्ट करनेकी आवश्यकता ही न पड़ेगी। वास्तवमें इस बातकी आवश्यकता न पड़ेगी कि मसालों-से रोशनी करनी पड़े या पुराने ढङ्गसे जमीन जोती बोयी जाये। मनुष्योंने दासता स्वीकारकर कई शताब्दियां शिल्प और विज्ञानकी उन्नतिमें व्यतीत की हैं और यह समय सर्वथा व्यर्थ नहीं गया। इस बातका यदि ध्यान रखा जाये कि अपने सुखके लिये अपने भाईकी जान लेना पाप है, तो वैज्ञानिक और शिल्प-सम्बन्धी साधनोंका सावधानीसे प्रयोग किया जा सकता है। उनसे मनुष्योंके प्राण नहीं जा सकते। जीवनमें ऐसे उपाय काममें लाये जा सकते हैं, जिससे प्रकृतिके अङ्गोंपर मनुष्यका प्रभुत्व बना रहे और भाइयोंको दासताके बन्धनमें भी न फंसना पड़े।

(७)

गुलामी हममें है।

यदि कोई सीधासादा आदमी किसी ऐसे स्थानसे आवे जहांपर मनुष्यताका बर्ताव सबके साथ होता है, तो वह नयी धूम और सभ्यताको देखकर क्या कहेगा। उसे सबसे पहले यह बात

दिखाई देगी कि कुछ थोड़ेसे आदमी हाथ-मुंह साफ रखते हुए कुछ भी काम नहीं करते, रातदिन आमोद-प्रमोदमें व्यतीत करते हैं, अपने लाखों भाइयोंके कठोर परिश्रमके फलको पानीकी तरह बहाते हुए आलसी जीवन व्यतीत कर रहे हैं और दूसरी ओर मैले कुचैले आदमी, गन्दे और तङ्ग मकानोंमें चिथड़े पहनकर जीवन निर्वाह कर रहे हैं। वे सुबहसे शामतक पूरा परिश्रम करते हैं, परन्तु उस परिश्रमके बदलेमें दोनों वक्त भरपेट भोजन भी नहीं पाते। वे ऐसे आदमियोंके लिये काम करते हैं, जो स्वयं कुछ काम नहीं करते और आमोद-प्रमोदमें मग्न हैं।

पहले जमानेमें लोग आदमियोंको गुलाम बनाकर रखते थे और उनके जीवन-मरणपर उनका पूर्ण अधिकार था, परन्तु आजकल यह प्रथा घृणित कहकर उठा दी गयी है। इसपर भी यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाये, तो अब भी स्वामियों और गुलामोंका दर्जा बना हुआ है। फर्क इतना ही है कि आजकलके गुलाम कुछ समयके लिये ही गुलाम होते हैं या एक ही समयमें गुलाम और स्वामी दोनों होते हैं। गुलामों और स्वामियोंके बीच इतना बारीक भेद है कि इसका पता नहीं लगता, परन्तु दिन रातको अलग करनेवाली चीजका भले ही पता न लगे, २४ घण्टे दिन और रातमें अवश्य विभक्त हो जाते हैं।

यद्यपि आजकल कोई सभ्य मनुष्य गुलाम नहीं रखता जो पाखानोंके अन्दर जाकर मैला साफ करें, परन्तु पुराना गुलामोंका मालिक अपने पास पांच रुपये रखता है जिन रुपयोंकी हजारों

लाखों गरीब आदमियोंको जरूरत है। जिसके पास रुपया है, वह इन हजारोंमेंसे किसी एकको चुनकर उसका अन्नदाता बन सकता है और उससे पुराने जमानेके गुलामकी तरह सभी काम ले सकता है।

कल-कारखानोंमें काम करनेवाले श्रमजीवी ही गुलाम नहीं हैं जो अपना पेट भरनेके लिये अपने स्वामियोंके हाथ बिक जाते हैं, परन्तु वे किसान भी हैं जो रातदिन पसीना बहाकर, दूसरेके खेतोंमें दूसरेके लिये अन्न पैदा किया करते हैं या अपने ही खेतोंमें महाजनका ब्याज चुकानेके लिये परिश्रम किया करते हैं, जिस महाजनसे उन्हें कभी छुटकारा ही नहीं मिलता। इसके सिवा वे लाखों रसोइये, कुली, साईस तथा अन्य घरेलू नौकर गुलाम हैं जो रातदिन अपनी इच्छाके विरुद्ध काम किया करते हैं।

गुलामी बनी हुई है, परन्तु वह हमें दिखाई नहीं देती जिस तरह कि युरोपमें १८वीं शताब्दीके अन्तमें गुलामी विद्यमान थी, परन्तु दिखाई न देती थी।

उस जमानेके लोग समझा करते थे कि स्वामियोंके लिये खेती करना दूसरोंका स्वाभाविक काम है। आज्ञा पालन करना भी उनके लिये प्राकृतिक है। इसके बिना जीवन व्यतीत हो ही नहीं सकता। इसीसे वे उस अवस्थाको गुलामी नहीं मानते थे। आजकल भी लोगोंकी यही धारणा है। श्रमजीवियोंकी अवस्था अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे स्वाभाविक मानी जाती है। इसीसे वे इसे गुलामी नहीं समझते।

जिस तरह अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें युरोपवासी धीरे धीरे समझने लगे थे कि अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे जो उन्हें स्वाभाविक जीवन दिखाई दिया है, वह अन्यायपूर्ण है, उसे बदलनेकी जरूरत भी है। इसी तरह अब लोग समझने लग गये हैं कि अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे श्रमजीवियोंका वर्तमान जीवन स्वाभाविक नहीं, बल्कि न्यायविरुद्ध है और उसे बदलनेकी आवश्यकता है।

समाजके विचारशील मनुष्य श्रमजीवियोंकी गुलामीका अनुभव कर रहे हैं। अधिकांश मनुष्य उसका अनुभव ही नहीं करते। पहलेकी गुलामीकी प्रथा कुछ थोड़ेसे ही आदमियोंका जीवन बन्धनमें डाले हुए थी, परन्तु आजकलकी गुलामीमें बहुत ज्यादा आदमी पड़ गये हैं। क्रीमियाके तारतार लड़ाईमें जिन कैदियोंको पकड़ लाते थे, वे उनके पैरोंके तलोंमें घावकर उसमें कांटे चुभा दिया करते थे। इसके बाद उनकी बेड़ियां उतार लेते थे। उन्हें विश्वास हो जाता था कि कैदी भाग न सकेंगे। पुराने जमानेकी गुलामी इस ढङ्गसे उठायी गयी है कि गुलामीका प्रधान अङ्ग अब भी बना हुआ है और श्रमजीवी उससे छुटकारा नहीं पा सके यद्यपि गुलामी उठा देनेकी धूम मचा दी गयी है। अमेरिकामें लोगोंने उस समय गुलामी उठानेपर जोर दिया जब कि उन्होंने देख लिया कि रुपयेसे नये गुलाम बनाये जा सकते हैं और गुलाम बनानेकी यह प्रणाली सभ्यतापूर्ण भी है। रूसमें उस समय गुलामी उठी

जब कि देशकी सब जमीन स्वार्थियोंने अपने अधिकारमें कर ली। जब किसानोंको जमीन बांटी गयी, तब उनसे लगान मांगा गया। पहले उनसे मिहनत करा ली जाती थी।

युरोपमें उस समय कर उठाया गया, जब कि लोग जमीन खो बैठे और खेती करनेमें असमर्थ हो गये तथा शहरोंमें आकर पैसेवालोंके गुलाम बन गये। इङ्गलैण्डमें उसी समय अन्नपरसे कर उठाया गया। जर्मनी तथा अन्य देशोंमें श्रमजीवियोंको सभी टैक्सोंसे मुक्त किया जा रहा है जब कि अधिकांश मनुष्य पैसेवालोंके हाथमें आ चुके हैं। गुलामीका एक ढङ्ग उस समयतक नहीं दूर किया जाता, जबतक कि और कोई नया ढङ्ग नहीं निकल आता। गुलामीके ढङ्ग तो एक नहीं अनेक हैं।

यदि एक प्रकारकी गुलामी लोगोंको बन्धनमें नहीं डालती, तो दूसरे प्रकारकी डाल देती है। थोड़ेसे आदमी बहुतसे आदमियोंपर अपना अधिकार जमा लेते हैं। थोड़ेसे आदमियोंपर बहुतसे आदमियोंका अधिकार हो जाना ही जनताके कष्टोंका कारण है। इसलिये श्रमजीवियोंकी अवस्थाका सुधार इस तरह हो सकता है कि इस बातका अनुभव होने लगे कि गुलामी वास्तवमें फैली हुई है। जब इस बातका अनुभव होने लगे, तब इस बातका कारण मालूम किया जाये कि बहुतसे आदमियोंपर थोड़ेसे आदमियोंका अधिकार क्यों है। कारण मालूम हो जानेपर उन्हें दूर करनेका प्रयत्न होना चाहिये।

(८)

गुलामी क्या है।

हमारे इस युगमें किस बातमें गुलामी है। किन कारणोंसे थोड़े आदमी बहुतसे आदमियोंपर अधिकार जमा लेनेमें समर्थ हो जाते हैं। संसार भरमें जितने श्रमजीवी हैं, उनसे यदि प्रश्न किया जाये कि किस कारणसे वे वर्तमान अवस्थामें हैं, तो अधिकांश यही उत्तर देंगे कि हमारे पास जमीन न थी या जिनके पास जमीन थी, उन्हें इतने कर चुकाने पड़ते थे कि मजूरी करनेकी जरूरत हुई या यह कहा जायेगा कि शहरोंके विलासी जीवनने आकर्षित किया। यह जीवन मजूरी करने और स्वतन्त्रता बेचनेसे ही भोगनेको मिला। जमीन न रहने या करोंके बोझसे आदमी जबर्दस्ती मजूरी करनेके लिये बाध्य होते हैं। शहरोंका जीवन उन्हें प्रलोभनमें डाला करता है।

जमीनकी प्राप्ति पहले बतायी हुई हेनरी जार्जकी तरकीबसे हो सकती है और गरीबोंसे वसूल किये जानेवाले टैक्स अमीरोंके सिरपर लादे जा सकते हैं जैसा कि बहुतसे देशोंमें हो रहा है, परन्तु नगरोंके विलासी जीवनका आकर्षण ऐसा असाध्य रोग है जिसका इलाज सम्भव नहीं। जिस तरह पानी ऊंची जमीनसे बहकर नीची जमीनकी ओर जरूर ही जाता है, उसी तरह बड़े आदमियोंके विलासी जीवनसे गरीब आदमी भी प्रलोभनमें पड़ सकते हैं। अमीर आदमी विलासी जीवन न भोगें यह तो सम्भव ही नहीं है, फिर उनके पास रहनेसे धीरे धीरे श्रमजीवी भी उसी

जब कि देशकी सब जमीन स्वार्थियोंने अपने अधिकारमें कर ली। जब किसानोंको जमीन बांटी गयी, तब उनसे लगान मांगा गया। पहले उनसे मिहनत करा ली जाती थी।

युरोपमें उस समय कर उठाया गया, जब कि लोग जमीन खो बैठे और खेती करनेमें असमर्थ हो गये तथा शहरोंमें आकर पैसेवालोंके गुलाम बन गये। इङ्गलैण्डमें उसी समय अन्नपरसे कर उठाया गया। जर्मनी तथा अन्य देशोंमें श्रमजीवियोंको सभी टैक्सोंसे मुक्त किया जा रहा है जब कि अधिकांश मनुष्य पैसेवालोंके हाथमें आ चुके हैं। गुलामीका एक ढङ्ग उस समयतक नहीं दूर किया जाता, जबतक कि और कोई नया ढङ्ग नहीं निकल आता। गुलामीके ढङ्ग तो एक नहीं अनेक हैं।

यदि एक प्रकारकी गुलामी लोगोंको बन्धनमें नहीं डालती, तो दूसरे प्रकारकी डाल देती है। थोड़ेसे आदमी बहुतसे आदमियोंपर अपना अधिकार जमा लेते हैं। थोड़ेसे आदमियोंपर बहुतसे आदमियोंका अधिकार हो जाना ही जनताके कष्टोंका कारण है। इसलिये श्रमजीवियोंकी अवस्थाका सुधार इस तरह हो सकता है कि इस बातका अनुभव होने लगे कि गुलामी वास्तवमें फैली हुई है। जब इस बातका अनुभव होने लगे, तब इस बातका कारण मालूम किया जाये कि बहुतसे आदमियोंपर थोड़ेसे आदमियोंका अधिकार क्यों है। कारण मालूम हो जानेपर उन्हें दूर करनेका प्रयत्न होना चाहिये।

(८)
गुलामी क्या है ।

हमारे इस युगमें किस बातमें गुलामी है। किन कारणोंसे थोडे आदमी बहुतसे आदमियोंपर अधिकार जमा लेनेमें समर्थ हो जाते हैं। ससार भरमें जितने श्रमजीवी हैं, उनसे यदि प्रश्न किया जाये कि किस कारणसे वे वर्तमान अवस्थामें हैं, तो अधिकांश यही उत्तर देंगे कि हमारे पास जमीन न थी या जिनके पास जमीन थी, उन्हें इतने कर चुकाने पडते थे कि मजूरी करनेकी जरूरत हुई या यह कहा जायेगा कि शहरोंके विलासी जीवनने आकर्षित किया। यह जीवन मजूरी करने और स्वतन्त्रता बेचनेसे ही भोगनेको मिला। जमीन न रहने या करोंके बोझसे आदमी जबर्दस्ती मजूरी करनेके लिये बाध्य होते हैं। शहरोंका जीवन उन्हें प्रलोभनमें डाला करता है।

जमीनकी प्राप्ति पहले बतायी हुई हेनरी जार्जकी तरकीबसे हो सकती है और गरीबोंसे वसूल किये जानेवाले टेक्स अमीरोंके शिरपर लादे जा सकते हैं जैसा कि बहुतसे देशोंमें हो रहा है, परन्तु नगरोंके विलासी जीवनका आकर्षण ऐसा असाध्य रोग है जिसका इलाज सम्भव नहीं। जिस तरह पानी ऊंची जमीनसे बहकर नीची जमीनकी ओर जरूर ही जाता है, उसी तरह बडे आदमियोंके विलासी जीवनसे गरीब आदमी भी प्रलोभनमें पड सकते हैं। अमीर आदमी विलासी जीवन न भोगें यह तो सम्भव ही नहीं है, फिर उनके पास रहनेसे धीरे धीरे श्रमजीवी भी उसी

जब कि देशकी सब जमीन स्वार्थियोंने अपने अधिकारमें कर ली। जब किसानोंको जमीन बांटी गयी, तब उनसे लगान मांगा गया। पहले उनसे मिहनत करा ली जाती थी।

युरोपमें उस समय कर उठाया गया, जब कि लोग जमीन खो बैठे और खेती करनेमें असमर्थ हो गये तथा शहरोंमें आकर पैसेवालोंके गुलाम बन गये। इङ्गलैण्डमें उसी समय अन्नपरसे कर उठाया गया। जर्मनी तथा अन्य देशोंमें श्रमजीवियोंको सभी टेक्सोंसे मुक्त किया जा रहा है जब कि अधिकांश मनुष्य पैसेवालोंके हाथमें आ चुके हैं। गुलामीका एक ढङ्ग उस समयतक नहीं दूर किया जाता, जबतक कि और कोई नया ढङ्ग नहीं निकल आता। गुलामीके ढङ्ग तो एक नहीं अनेक हैं।

यदि एक प्रकारकी गुलामी लोगोंको बन्धनमें नहीं डालती, तो दूसरे प्रकारकी डाल देती है। थोड़ेसे आदमी बहुतसे आदमियोंपर अपना अधिकार जमा लेते हैं। थोड़ेसे आदमियोंपर बहुतसे आदमियोंका अधिकार हो जाना ही जनताके कष्टोंका कारण है। इसलिये श्रमजीवियोंकी अवस्थाका सुधार इस तरह हो सकता है कि इस बातका अनुभव होने लगे कि गुलामी वास्तवमें फैली हुई है। जब इस बातका अनुभव होने लगे, तब इस बातका कारण मालूम किया जाये कि बहुतसे आदमियोंपर थोड़ेसे आदमियोंका अधिकार क्यों है। कारण मालूम हो जानेपर उन्हें दूर करनेका प्रयत्न होना चाहिये।

विपरीत ही काम हुआ और हो रहा है। कुछ चुने हुए लोगोंके हाथमें जमीन है और अधिकांश आदमी उस जमीनको काममें लाते हैं। जमीनके स्वामी जरासी बातपर किसानोंको जमीन-परसे हटा सकते हैं। जमीन पैतृक सम्पत्ति बन गयी इसलिये किसानोंके अधिकार तो और भी सुरक्षित नहीं रहे। किसान अपनी मिहनतका फल ही नहीं चखने पाते। पैतृक अधिकार उन्हें तो अपने परिश्रमके फलसे वञ्चित कर देता है और ऐसे लोगोंको अधिक अधिकार देता है जो स्वयं जरा भी मिहनत नहीं करते। जमीनपर पैतृक अधिकार कृषिकी उन्नति नहीं, अवनति करता है।

करोंके सम्बन्धमें यह बात कही जाती है कि लोगोंको उन्हें जरूर ही अदा करना चाहिये, क्योंकि वे सबकी सलाहसे ही नियत होते हैं चाहे सब इस सम्बन्धमें बोलें भी नहीं। ये कर सबके लाभके लिये हैं और सभीके काम आते हैं। क्या यह बात सच है?

इस प्रश्नका उत्तर भी इतिहासमें भरा पड़ा है और आज-कलकी परिस्थितिसे भी मिल सकता है। इतिहास बता रहा है कि कर कभी सबकी रायसे नहीं लगाये गये। वे तो उन लोगोंने अपनी इच्छासे लगाये, जो विजय या अन्य किसी कारणसे शक्ति पा गये।

जितने कर उन्होंने लगाये जनताके हितके लिये नहीं, अपने लाभके लिये लगाये। अब भी यही बात देखनेमें आती है। वे ही

हवाले कर दें। क्या यह बात ठीक है कि लोग उन चीजोंका प्रयोग ही न कर सकें जो दूसरेकी जायदादमें शामिल कर ली गयी है।

क्या यह ठीक है कि लोग जमीनको काममें ही न ला सकें जो दूसरोंकी बतायी जाती है और वे स्वयं उसे जोत बो नहीं रहे हैं?

कहा जाता है कि जमीन-सम्बन्धी कानून इसलिये काममें लाया जाता है कि भू-सम्पत्ति कृषिकी उन्नतिके लिये आवश्यक है यानी कुछ खास लोगोंको जमीनका मालिक बनाये बिना काम ही नहीं चल सकता। यदि कुछ व्यक्ति मालिक न हों, तो जो जिसे चाहेगा जमीनपरसे हटा देगा और कोई जमीनका प्रयोग न करेगा। क्या यह बात सच है? इसका जवाब इतिहास और आजकलकी परिस्थितिसे मिल सकता है। इतिहास डङ्केकी चोट बता रहा है कि जमीनपर कुछ लोगोंका पैतृक अधिकार इस इच्छासे नहीं हुआ कि जमीन काममें लानेवाले इस ढङ्गके कारण सुरक्षित हो जायेंगे। सार्वजनिक भूमिपर विजय पानेवालोंने अधिकार जमा लिया। उन्होंने अपनी सेवा करनेवालोंके बीच वह जमीन बांटी। किसानोंके सुधारके लिये जमीन नहीं बांटी गयी। आजकलकी परिस्थिति देखनेसे भी पता लगता है कि जमीनपर लोगोंका पैतृक अधिकार होनेसे किसान इसलिये निश्चिन्त नहीं है कि जो जमीन आज वे जोत बो रहे हैं, वह उन्हींके पास रहेगी। वास्तवमें जैसा कहा जाता है उसके

करनेवाली जातियां आवश्यक समझती हैं। विदेशोंमें अधिकार बढाने और उन्हें कायम रखनेमें खर्च होता है। यह कहना सरासर अन्याय है कि कर जनताकी स्वीकृतिसे लगाये जाते हैं और यह बात उसी तरह भ्रमजनक है जिस तरह यह कहना कि कृषिकी उन्नतिके लिये खास व्यक्तियोंको जमीनपर पैतृक अधिकार दिया जाता है।

क्या यह बात ठीक है कि लोग उन चीजोंको काममे न लायें जिनकी उन्हें जरूरत है अगर वे चीजें दूसरोंकी जायदाद मान ली गयी हैं? कहा जाता है कि सम्पत्तिपर अधिकारका नियम इसलिये चलाया गया है जिससे मजूरको इस बातका विश्वास रहे कि अपनी मिहनतसे जो कुछ प्राप्त हुआ है वह दूसरा न छीनेगा। क्या यह बात सच है?

संसारमें जो कुछ हो रहा है उसपर जरा ध्यान देनेकी जरूरत है। संसारमें जायदादका अधिकार बडी सरगर्मीसे सुरक्षित रखा जाता है। सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर पता लगेगा कि असलमें बात कहनेके सर्वथा विपरीत है।

प्राप्त वस्तुपर अधिकारकी धूम जिस बातको रोकनेके लिये मचायी जाती है, वही बात वास्तवमें होती है। श्रमजीवी ज्यों ज्यों चीजें तैयार करते जाते हैं, वे उन लोगोंद्वारा अधिकारमें कर ली जाती है जो उन्हें तैयार नहीं करते। इसलिये जायदादी अधिकारकी बात सर्वथा मिथ्या है और जायदादकी रक्षाके लिये जो कानून बनाये जाते हैं उनसे श्रमजीवियोंको लाभ नहीं

लोग कर वसूल करते हैं जो ऐसा करनेकी शक्ति रखते हैं। यदि करोंका कुछ हिस्सा सार्वजनिक कामोंमें व्यय भी किया जाता है, तो ये सार्वजनिक काम लाभदायक नहीं उल्टे हानिकारक हैं। रूसमें किसानोंसे एक तिहाई आमदनी करोंके रूपमें ले ली जाती है, परन्तु तमाम सरकारी आयका पचासवां हिस्सा भी जनताकी सबसे बड़ी जरूरत—शिक्षामें व्यय नहीं किया जाता। जो कुछ धन शिक्षाप्रचारमें लगता भी है, वह ऐसी शिक्षा फैलाता है जो जनताको जागृत करनेकी अपेक्षा और भी सुलाती है। इस तरह वह जनताका अहित किया करती है। ४९ हिस्से ऐसे कामोंमें खर्च होते हैं जिनसे जनताको लाभ नहीं। सेनाएं सजायी जाती हैं, किले, जेलखाने और सैनिक रेलें तैयार की जाती हैं। सैनिक और असैनिक अफसरोंको बड़ी बड़ी तनखाहें चुकायी जाती हैं और खुशामदी धर्माचार्यों और दरबारियोंका पेट भरा जाता है। यानी उन्हीं लोगोंके खर्चमें सब आमदनी आती है, जो उसे एकत्र किया करते हैं और जनतासे वसूल करते हैं।

यही दशा तुर्की, फारिस और भारतकी तथा संसारके अन्य देशोंकी भी है जहांपर प्रजातन्त्र शासन भी स्थापित है। अधिकांश आदमियोंसे रुपया वसूल किया जाता है और इस बातकी जरा भी परवा नहीं की जाती कि वे स्वेच्छासे दे रहे हैं या नहीं। इतना रुपया नहीं लिया जाता जितना वास्तवमें आवश्यक है, बल्कि जितना मिल सकता है बटोरा जाता है। वह जनताके लाभमें व्यय नहीं होता, बल्कि उन बातोंमें व्यय होता है जिन्हें शासन

तो हाथ बांध दिये गये हैं और दूसरेके हाथ ही नहीं खुले, बल्कि उसे हथियार भी मिले हुए हैं। दोनोंमें इतना भेद होनेपर भी दोनोंके लिये लडनेके नियम पक्षपातशून्य ढङ्गसे काममें लानेकी दुहाई दी जाती है। वास्तवमें सभी कानून गुलामी बढानेवाले हैं और उनका समर्थन उसी तरह किया जाता है, जिस तरह पहले गुलामीके नियमोंका किया जाता था। ऊपर बताये हुए तीनों कानूनोंने गुलामी कायम रक्खी है यद्यपि उसका स्वरूप बदल गया है। जिस तरह पहले जमानेमें लोग आदमियोंको खरीद सकते, बेच सकते और अपनी इच्छानुसार उनसे काम ले सकते थे, उसी तरह आजकल कानून बन गये हैं जिनके कारण कोई उस जमीनको काममें लानेमें स्वतन्त्र नहीं है जिसपर अन्य किसीका पैतृक अधिकार जम गया है। कानूनोंके कारण लोगोंको चुपचाप कर चुका देना पडता है जितना उन-से मांगा जाता है। वे ऐसी चीजें काममें नहीं ला सकते, जो दूसरेकी जायदाद बन चुकी हैं। यह हमारे जमानेकी गुलामी है।

(१०)

गुलामीका कारण।

जमीन, जायदाद और करोंके सम्बन्धमें बने हुए कानूनोंने हमारे जमानेकी गुलामी पैदा की है। इसलिये जो लोग श्रम-जीवियोंकी दुर्दशा मिटाना चाहें, वे इन कानूनोंकी जड खोदनेकी ओर ध्यान लगायें।

पहुंचता, क्योंकि अपने परिश्रमके फलको वे अपने पास नहीं रखने पाते और दूसरे उसे छीन लेते हैं। खेतीके सुधार और जनता के लाभके वास्ते कर लगानेके लिये जैसे व्यर्थ दुहाई दी जाती है, उसी तरह जायदादपर व्यक्तियोंके अधिकारकी बात श्रमजीवियों को धोखा देनेवाली है। उनसे जो लोग अन्यायपूर्वक जबर्दस्ती चीजें छीन लेते हैं, कानून उनकी ही रक्षा करनेमें काम आता है और चोरोंको साधु बनाता है।

एक कारखाना जो नाना प्रकारके धोखेसे प्राप्त हुआ है और श्रमजीवियोंके परिश्रमसे वैसा बना है, वह व्यक्तिविशेष या दल-विशेषकी सम्पत्ति मान लिया जाता है और दूसरे उसे छू भी नहीं सकते, परन्तु काम करनेवालोंकी जानें जो कारखाना चलानेमें खतम होती हैं और उनका परिश्रम उनकी जायदाद नहीं, बल्कि कारखानेके मालिककी जायदाद हैं, जिसने गरीब आदमियोंकी आवश्यकताएं देखकर उन्हें किसी तरह बन्धनमें जकड़ लिया है जो कानूनी मान लिया गया है। हजारों मन गल्ला जो सूदखोरी तथा अन्य कड़ाइयोंको काममें लाकर बेचारे किसानोंसे छीन लिया गया है वह व्यापारीकी जायदाद है, परन्तु किसानोंने मिहनतकर जो फसल तैयार की है वह किसी दूसरेकी जायदाद है जो भूमिपर पैतृक अधिकार रखता है और जिसके किसी पूर्वजने वह जमीन जनतासे ही छीनी थी। कहा जाता है कि कानून अमीर गरीब सबकी रक्षा समान रूपसे करता है, परन्तु अमीर गरीबकी दशा उन दो लड़नेवालोंके समान है जिनमें एकके

तरह जमीनपर पैतृक अधिकार करानेके कानून उठा देना चाहते हैं, वे जमीनपर एक नया कर लगाते हैं जो सबको अवश्य ही अदा करना पड़ेगा। गुलामी बढ़ानेका यह भी मार्ग है।

यदि किसी समय अच्छी फसल न हुई और कर चुकाना जरूरी है, तो किसीसे रुपया उधार लेकर कर चुकाया जायेगा और उसकी गुलामीमें पड़नेका मौका मिलेगा। जो साम्यवादी जमीनपर व्यक्तिगत अधिकार नहीं रखना चाहते और कल-कारखाने सार्वजनिक सम्पत्ति बना देना चाहते हैं, वे कर-सम्बन्धी कानून बनाये रखनेके सिवा जबर्दस्ती काम करनेके लिये कानूनका मार्ग खोलते हैं। यह कानून पुराने जमानेके समान ही गुलामी नहीं पैदा करेगा तो क्या करेगा। इस तरह एक न एक ढङ्गसे गुलामी बनी रहती है जब कि गुलामी पैदा करनेवाले कानूनोंको उठा देनेकी चर्चा होती है। होता यही है कि जेलमें एक कैदीकी तरह बेड़ियां गर्दनसे हाथोंमें और हाथोंसे टांगोंमें चली आती हैं। यदि जेलर बेड़ियां उतार लेता है, तो बन्द कमरा दे देता है। संसारमें श्रमजीवियोंके सुधारके अबतक जितने प्रयत्न हुए हैं, सब इसी ढङ्गके हुए हैं।

पहले यही कानून था कि गुलामोंसे जबर्दस्ती काम लिया जाता था, परन्तु पीछेसे उसकी जगहपर यह कानून बना कि स्वामियोंके हाथमें जमीन रहे और वे किसीसे जबर्दस्ती काम न ले सकें। जमीनका अधिकार नष्टकर कर-सम्बन्धी कानून काममें लाये जा सकते हैं। करका प्रबन्ध स्वामियोंके ही हाथमें रहेगा।

कुछ लोग करोंको गरीब आदमियोंपरसे हटाकर अमीर आदमियोंके ऊपर रखना चाहते हैं, कुछ भू-सम्पत्ति बिल्कुल ही उठा देनेके पक्षमें हैं। न्यूजीलैण्ड और अमेरिकाके एक राष्ट्रमें यह उद्योग आरम्भ भी हो चुका है। साम्यवादी कल-कारखानोंको सार्वजनिक सम्पत्ति बना देना चाहते हैं। वे आमदनी और पैतृक अधिकारसे पायी हुई सम्पत्तिपर अधिक कर लगवाना चाहते हैं और पैसेवालोंके अधिकार संकुचित करना चाहते हैं। इन बातोंको ध्यानमें रखकर बहुतसे लोग समझते हैं कि कानून उठ जायेंगे और वे आशा करते हैं कि गुलामी न रहेगी। यदि हम सूक्ष्म दृष्टिसे देखें तो पता लगेगा कि श्रमजीवियोंकी अवस्था सुधारनेके लिये जो कानून उठाये जानेवाले हैं, उनकी जगह अप्रत्यक्ष रूपसे नये कानूनोंकी रचना हो रही है। इस तरह गुलामीका दूसरा ढङ्ग स्थान पा रहा है। जो लोग गरीबोंपरसे कर उठाकर अमीरोंपर लादना चाहते हैं, वे इस बातको मान लेते हैं कि अमीर आदमी जमीनपर व्यक्तिगत तौरसे अधिकार रख सकेंगे और इस जमीनकी आयसे ही कर चुकायेंगे। साथ ही वे और भी चीजोंके मालिक रहेंगे जिनसे पूरी आमदनी होगी और वह आमदनी कर चुकानेमें काम आयेगी। अमीरोंके पास कर चुकानेके लिये आसमानसे तो धन आयेगा नहीं। श्रमजीवी यदि करोंसे मुक्त भी कर दिये गये, तब भी वे पैसेवालोंके गुलाम रहेंगे; क्योंकि जमीनपर पैतृक अधिकार होनेसे बड़े आदमियोंको दूसरोंको वशमें रखनेका मौका मिलेगा ही। जो हेनरी जार्जकी

तरह जमीनपर पैतृक अधिकार करानेके कानून उठा देना चाहते हैं, वे जमीनपर एक नया कर लगाते हैं जो सबको अवश्य ही अदा करना पड़ेगा। गुलामी बढ़ानेका यह भी मार्ग है।

यदि किसी समय अच्छी फसल न हुई और कर चुकाना जरूरी है, तो किसीसे रुपया उधार लेकर कर चुकाया जायेगा और उसकी गुलामीमें पड़नेका मौका मिलेगा। जो साम्यवादी जमीनपर व्यक्तिगत अधिकार नहीं रखना चाहते और कल-कारखाने सार्वजनिक सम्पत्ति बना देना चाहते हैं, वे कर-सम्बन्धी कानून बनाये रखनेके सिवा जबर्दस्ती काम करनेके लिये कानूनका मार्ग खोलते हैं। यह कानून पुराने जमानेके समान ही गुलामी नहीं पैदा करेगा तो क्या करेगा। इस तरह एक न एक ढङ्गसे गुलामी बनी रहती है जब कि गुलामी पैदा करनेवाले कानूनोंको उठा देनेकी चर्चा होती है। होता यही है कि जेलके एक कैदीकी तरह बेड़ियां गर्दनसे हाथोंमें और हाथोंसे टांगोंमें चली आती हैं। यदि जेलर बेड़ियां उतार लेता है, तो बन्द कमरा दे देता है। संसारमें श्रमजीवियोंके सुधारके अबतक जितने प्रयत्न हुए हैं, सब इसी ढङ्गके हुए हैं।

पहले यही कानून था कि गुलामोंसे जबर्दस्ती काम लिया जाता था, परन्तु पीछेसे उसकी जगहपर यह कानून बना कि स्वामियोंके हाथमें जमीन रहे और वे किसीसे जबर्दस्ती काम न ले सकें। जमीनका अधिकार लेकर कर-सम्बन्धी कानून काममें लाये जा सकते हैं। करका प्रबन्ध स्वामियोंके ही हाथमें रहेगा।

कर-सम्बन्धी कानून उठा देनेपर चीजोंपर लोगोंको व्यक्तिगत अधिकार देनेका कानून सामने आयेगा और कालान्तरमें यह अधिकार भी नष्टकर उसकी जगहपर जबर्दस्ती काम लेनेका कानून दिखाई देगा।

इससे स्पष्ट है कि जमीन, जायदाद और कर-सम्बन्धी कानून एक तरहकी गुलामी दूरकर दूसरे ढङ्गकी गुलामीको स्थान देते रहेंगे। तीनों कानून एक साथ उठा देनेसे भी गुलामीका अन्त न होगा। फिर भी एक नये ढङ्गकी गुलामी स्थान पायेगी। उस गुलामीके चिन्ह दिखाई देने लगे हैं और वह श्रमजीवियोंको बन्धनमें डाल रही है। काम करनेके घण्टोंके सम्बन्धमें, श्रमजीवियोंकी आयु और अवस्थाके सम्बन्धमें तथा स्कूलोंमें जबर्दस्ती पढ़ानेके सम्बन्धमें कानून बन रहे हैं। यह सब गुलामीका नया ढङ्ग है। एक बिल्कुल ही नये ढङ्गकी गुलामी स्थान पा रही है।

स्पष्ट है कि गुलामी आज जिन कानूनोंके कारण है, उनकी जड़में नहीं और न उन कानूनों या अन्य किसी कानूनमें ही है, बल्कि कानून है इसीमें गुलामी भरी हुई है। यानी कानून रखनेका यह अर्थ है कि कुछ लोग ऐसे हैं जो कानून तैयार करते हैं। वे अपना लाभ हर हालतमें देखेंगे। जबतक लोगोंके पास यह अधिकार है, गुलामीका अन्त हो ही नहीं सकता।

पहले जमानेमें लोगोंको गुलामोंके रखनेमें लाभ था इसलिये उन्होंने गुलाम सम्बन्धी कानून बनाये थे। जब जमीन रखनेमें

फायदा दिखाई देने लगा, तब जमीनके लिये कानून बना डाले गये। अब लोग इसमें फायदा समझते हैं कि श्रमविभागपर अपना निरीक्षण और अधिकार रहे, इसलिये वे इस सम्बन्धमें कानून बनानेकी धुनमें हैं। गुलामीका प्रधान कारण कानूनोंकी रचना है। कानून बनानेका यह अर्थ है कि कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें कानून बनानेका अधिकार है। कानून क्या है और लोग कानून बनानेका अधिकार किस तरह पाते हैं?

(११)

कानूनका सार संगठित पशुबल है।

सिद्धान्तवादी कहते हैं कि कानून समस्त जनताकी प्रकट इच्छाका नाम है। परन्तु यह बात वास्तवमें नहीं है, क्योंकि हरएक स्थानमें कानूनको काममें लानेवालोंकी अपेक्षा कानून तोडनेवालों या तोडनेकी इच्छा रखनेवालोंकी संख्या कहीं अधिक है। दण्डके भयसे कानून न तोडा जाये, यह दूसरी बात है। जब यह हालत है, तब कानून समस्त जनताकी प्रकट की हुई सम्मति है यह कैसे माना जा सकता है।

उदाहरणके लिये देखा जाये कि तार न तोडनेका कानून है, कुछ लोगोंके प्रति सम्मान दिखानेका कानून है। हरएक आदमीको मौका पड़नेपर सैनिक सेवा करनी पड़ेगी या जूरर बनना पड़ेगा, यह भी कानून है। किसीकी जमीन काममें न लायी जायेगी जबतक उसकी अनुमति न मिले, यह भी कानून है। जाली रुपये या नोट न बनाये जायें इसका भी कानून

है। इसी तरह और भी बहुतसे कानून हैं। इनमेंसे कौनसा कानून जनताकी प्रकट इच्छा कहा जा सकता है? सब कानून किसी न किसी उद्देश्यसे बनाये गये हैं और सबमें यह बात विद्यमान है कि जो उनमेंसे किसीको न मानेगा, उसके विरुद्ध सेना रवाना की जायेगी। सेना कानून न माननेवालेको मारेगी, उसकी स्वतन्त्रता छीनेगी और उसके प्राणतक ले लेगी।

यदि कोई आदमी अपनी कड़ी मिहनतका फल करोंके रूपमें देनेको तैयार नहीं; तो हथियारबन्द आदमी आकर उससे जो चाहेंगे, छीन ले जायेंगे। यदि वह विरोध करेगा, तो मार खायेगा। यह भी सम्भव है कि वह जानसे मार डाला जाये। जो दूसरेकी अनुमतिके बिना जमीन ले लेगा, उसकी भी यही दशा होगी, यही दशा उस आदमीकी भी होगी जो अपनी आवश्यकताएं पूरी करनेके लिये वे चीजें ले लेता है जो दूसरेकी जायदाद मान ली गयी हैं।

जिन लोगोंके प्रति सम्मान दिखानेका कानून है यदि उनके प्रति सम्मान न दिखाया जायेगा, तो उसकी भी दुर्दशा की जायेगी। जो अपनी इच्छाके विरुद्ध सेनामें भर्ती होकर न लड़ना चाहेगा, वह भी सताया जायेगा। जो भी कानून न माना जायेगा, उसके लिये दण्ड भोगना होगा। जो कानून बनाते हैं, वे अपराधीको हर तरहका दण्ड देंगे।

बहुतसी शासनप्रणालियां बनायी गयी हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो कि जो कानून काममें लाये जा रहे हैं, वे जनताकी इच्छासे

तैयार हुए हैं। परन्तु यह बात सभी जानते हैं कि निरंकुश शासनमें ही नहीं, इङ्गलैण्ड, फ्रान्स और अमेरिका आदि स्वतन्त्रसे स्वतन्त्र देशोंमें भी जनताकी इच्छासे कानूनोंकी रचना नहीं हुई। कानून उन्हीं लोगोंने बनाये हैं जिनके हाथमें शक्ति है। इसीसे वे उन शक्तिसम्पन्न लोगोंके लिये ही लाभदायक हैं। चाहे उनकी संख्या, अधिक हो या कम हो या एक ही हो। सभी जगह पशुबलके सहारे कानूनोंके अनुसार काम कराया जाता है। इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं।

दूसरा मार्ग हो भी नहीं सकता। कानून कुछ आदमियोंसे दूसरोंकी इच्छा पूरी करानेके साधन हैं। इच्छा न होनेपर भी दूसरेकी बात पशुबलके भयसे ही मानी जा सकती है। यदि कानून हैं, तो उनके पालनके लिये पशुबल भी रहेगा। यह पशुबल साधारण नहीं, बल्कि सङ्गठित होगा जिससे शक्तिसम्पन्न आदमियोंकी इच्छाके अनुकूल काम होता रहे जिसे वे कानूनका पालन कहेंगे।

इसलिये कानूनका प्रधान उद्देश्य न तो जनताकी इच्छाको काममें लाना है और न जनताके अधिकारोंकी रक्षा करना ही है। उसका प्रधान उद्देश्य शक्तिसम्पन्न व्यक्तियोंकी इच्छानुसार दूसरों-से जबर्दस्ती काम कराना है जिसके लिये हर समय सङ्गठित पशुबल तैयार रहता है। कानूनकी असली परिभाषा यह है कि वे पशुबलकी सहायतासे, शासन करनेवालोंद्वारा बनाये हुए नियम हैं जिनका पालन न करनेसे मृत्युका भी सामना करना

पड़ता है। इस परिभाषासे उस प्रश्नका उत्तर मिल जाता है, जिसमें पूछा गया है कि लोगोंको कानून बनाना किस तरह सम्भव है। जो चीज़ कानून तैयार कराती है, वही उन कानूनोंका पालन भी कराती है और वह चीज़ सङ्गठित पशुबल है।

(१२)

सरकारें क्या हैं। उनका अस्तित्व क्या आवश्यक है?

श्रमजीवी गुलामीमें पड़े रहनेके कारण कष्ट भोग रहे हैं। गुलामीका कारण कानून हैं जो पशुबलपर चलाये जा रहे हैं। संगठित पशुबलका नाश करनेसे जनताकी कष्टमय अवस्था दूर की जा सकती है। सङ्गठित पशुबलका नाम ही सरकार है और सरकारोंके बिना किस तरह जीवन सम्भव है। उनके न रहनेसे चारों ओर अराजकता फैल जायेगी, सभ्यताका फल मिट्टीमें मिल जायेगा और लोग असभ्यताकी ओर लौट पड़ेंगे, यही सरकारोंके हिमायती कहते हैं। जिन लोगोंको वर्तमान प्रणाली और कानूनोंसे लाभ पहुंच रहा है, वे ही यह बात नहीं कहते, जिन्हें कष्ट पहुंच रहा है वे भी यही बात कहते हैं; क्योंकि वे कल्पना ही नहीं कर सकते कि सरकारोंके बिना भी जीवन व्यतीत किया जा सकता है। वे सोचते हैं कि सरकारें न रहनेसे चारों ओर चोरी, डकैती और बदमाशी बढ़ जायेगी, बुरे आदमी भले आदमियोंको तङ्गकर उनका सब कुछ छीन लेंगे और उन्हें अपना गुलाम बना लेंगे। इसलिये सुखी और दुखी सभी चाहते हैं कि सामने जो ढङ्ग दिखाई दे रहा है,

उसे छुआ भी न जाये। उसे छूनेसे ही सब बुराइयां सामने आ जायेंगी।

हजारों ईंटोंके ढेरसे एक बड़ा स्तम्भ बना खड़ा है। वह इतना अप्राकृतिक है कि उसकी एक ईंट इधर उधर करनेसे ही वह बालूकी दीवालकी तरह झट नीचे गिरता दिखाई देगा। ऐसे स्तम्भको खड़े रखनेसे लाभ ही क्या है। सब ईंटें निकालकर इस तरहकी व्यवस्था क्यों न की जाये जिससे यह स्तम्भ वास्तवमें मजबूत बन जाये। पुराने ढांचेको बदलकर नयी व्यवस्था क्यों न की जाये। पशुबलपर खड़ी हुई सरकारें कमजोर खम्भेके समान हैं और उनमें जरासा परिवर्तन करनेसे ही जब सभ्यताका ढेर नष्ट होनेकी सम्भावना है, तो सरकारोंका यह अप्राकृतिक स्वरूप क्यों कायम रखा जाये। जब जरासे आघातसे सारी सभ्यता धूलमें मिल सकती है, तब ऐसे सङ्गठनको अनावश्यक न कहा जाये, तो क्या कहा जाये। इस भयानक और हानिकारक सङ्गठनको जारी रखनेसे क्या काम है। यह सङ्गठन हानिकारक तो अवश्य है, क्योंकि उसके कारण समाजकी बुराई घटती नहीं, बढ़ती ही है। सरकारोंने इस बुराईको न्यायसङ्गत ठहरा दिया है या उसका स्वरूप चित्ताकर्षक बना दिया है या उसे भीतर ही भीतर छिपा रखा है।

सुशासित राष्ट्रोंमें जो पशुबलसे भयभीत किये गये हैं बाहर सब लोग सुखी दिखाई देते हैं। वास्तवमें सुख नहीं है। जो

सुखमय दृश्यमें बाधा देनेवाले भूखे, नङ्गे और बीमार आदमी हैं, वे सबके सामने नहीं रखे जाते। वे छिपाकर रखे जाते हैं। हम उन्हें नहीं देख सकते इसका यह अर्थ नहीं है कि वे मौजूद ही नहीं हैं। वे जितने छिपाकर रखे जायेंगे, उतना ही अधिक उनपर अत्याचार होगा। पशुबलपर स्थापित सरकारें यदि नष्ट की जायेंगी, तो सुखी जीवनका बाहरी दृश्य अवश्य नष्ट हो जायेगा; परन्तु सरकारोंके नाशसे जनताका कोई अहित नहीं हो सकता। बाहरी सुखी जीवनके भीतर जो दुःखमय जीवनकी पोल है, वह अवश्य दिखाई देने लग जायेगी और उस जीवनके सुधारका प्रयत्न भी होने लगेगा।

अबतक लोगोंका यही विश्वास था कि सरकारोंके बिना जीवन व्यतीत ही नहीं किया जा सकता, परन्तु समयने मनुष्यके भावोंमें परिवर्तन उपस्थित कर दिया। सरकारोंने बड़ी चेष्टा की कि लोग भुलावेमें पड़े रहें और उनके अस्तित्वको आवश्यक मानें, परन्तु लोग जाग गये और खासकर युरोप और अमेरिकाके श्रमजीवियोंको ज्ञान हुआ कि इस दुःखमय अवस्थाका क्या कारण है।

सरकारें रातदिन यह बात कहा करती हैं कि यदि हमारा अस्तित्व न रहेगा, तो पड़ोसी आक्रमणकर जानमालपर सङ्कट उपस्थित कर देंगे। लोगोंकी धारणा हो रही है कि सरकारोंने झूठा भय दिला रखा है। वास्तवमें सरकारें ही अपने किसी गुप्त उद्देश्यकी पूर्तिके लिये जिसका जनताको पता भी नहीं

चलने पाता, दूसरे देशोंके आक्रमणको निमन्त्रण देती है। वे अपने अभिमानकी धुनमें या किसी अभिलाषाकी पूर्तिके लिये लड़ाई छेड़ देती हैं। प्रजाके पसीनेसे आया हुआ रुपया सेनाएं तैयार रखनेमें व्यय करती हैं। सरकारें बड़ी बड़ी स्थलसेनाएं, जल-सेनाएं, अस्त्रागार और सैनिक रेलों, हवाई जहाजों और गोता-खोरोंकी धूम मचाकर अपने पड़ोसियोंकी ईर्षाका कारण बनती हैं। सरकारें कहती तो यह हैं कि हम जनताके लिये लड़ाइयां लड़कर जमीनकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हैं, परन्तु प्रत्यक्षमें यह बात दिखाई देती है कि जमीन गरीब आदमियोंके हाथसे निकलकर धीरे धीरे उन पैसेवालोंके दलके पास जा रही है, जो स्वयं कुछ काम नहीं करते। अधिकांश आदमी इन आलसियोंके गुलाम बनते जा रहे हैं। जो जमीनको उत्तम बनाते हैं, उनसे जमीन छीनकर दूसरोंको दी जाती है। कहा तो यह जाता है कि सरकारें मिहनतीको उसकी मिहनतका फल दिलानेवाली हैं, परन्तु इसके विपरीत कार्य हो रहा है।

जो लोग बढ़िया चीजें तैयार करनेवाले हैं, वे सरकारोंकी कृपासे ऐसी अवस्थामें रखे गये हैं कि उन चीजोंकी तैयारीसे कभी लाभ नहीं उठा पाते। वे काम न करनेवालोंकी गुलामीमें रहा करते हैं।

लोग अब सरकारोंकी पोल अच्छी तरह समझ गये हैं और उनके अन्दर बड़ी जागृति उत्पन्न हो गयी है। शहरोंके ही नहीं, गावोंके श्रमजीवियोंके विचार भी बहुत जल्दी बदलते जा रहे हैं।

यदि ऐसा न होता तो वे स्वतन्त्र भूमिका जहां चाहते उपयोग करते, जिस जमीनकी संसारमें कमी नहीं हो सकती। अब रात दिन जमीनके लिये लड़ाई हुआ करती है और सरकारें अपने कानूनोंसे इस झगड़ेको मदद पहुंचाया करती हैं। इस झगड़ेमें उन बेचारोंको लाभ नहीं पहुंचता जो खेतोंमें काम करनेवाले हैं, बल्कि उन लोगोंका लाभ है जो सरकारके पशुबलमें हिस्सा लेनेवाले हैं।

जो आदमी कोई चीज अपनी मिहनत या गुणसे तैयार करे, उसकी रक्षाके लिये किसी प्रकारके पशुबलकी आवश्यकता नहीं। पारस्परिक सहायताके भाव तथा लोकमतद्वारा उन चीजोंकी रक्षा होती ही रहेगी।

एक आदमी लाखों बीघा जङ्गल रखे और उसके पड़ोसी लकड़ीके लिये तरसें, इस अन्यायपूर्ण विभागके लिये पशुबलकी तो आवश्यकता रहेगी। इसी तरह उन कल-कारखानोंकी पशुबलसे रक्षा करनी पड़ेगी जिनमें लाखों मजूर अपने स्वास्थ्यकी आहुति दे चुके। इसी तरह उस लाखों मन अन्नकी रक्षा भी पशुबलसे करनी पड़ेगी जो किसानोंके मुखसे छीना जाकर एक आदमीके पास इसलिये जमा है कि अकाल पड़नेपर वह चौगुने दामोंमें बेचा जाये। सरकार या किसी धनी आदमीको छोड़कर एक भी ऐसा आदमी गांवमें न मिलेगा जो अपने पड़ोसीको उस अन्नसे वञ्चित करे जो उसने अपनी मिहनतसे पैदा किया है। वह उसकी वह गाय भी न छीनेगा जो उसने स्वयं परिश्रम कर

पाली है। कोई किसान किसी दूसरे किसानका हल, बैल या खेतीका अन्य दूसरा साधन कभी न छीनेगा।

यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरेकी चीज ले भी ले, तो उसके प्रति सब लोग इतनी घृणा प्रकट करेंगे कि उसे चीज जिसकी है उसे लौटा देनी होगी। एक आदमी दूसरे आदमीकी चीजपर यदि अधिकार कर सकता है, तो उसी समय जब कि पशुबलके कारण जायदादकी रक्षा होनी सम्भव हो। आम तौरसे यह बात कही जाती है कि भू-सम्पत्तिका अधिकार यदि उठा दिया जाये और मिहनतके फलकी रक्षा न की जाये, तो कोई आदमी काम न करेगा। किसीको इस बातका विश्वास न होगा कि हमने जो तैयार किया है, वह हमारे पास ही रह सकेगा। इस कथनके विपरीत बात है। अन्यायसे पायी हुई जायदादकी रक्षा जबसे पशुबलके कारण होनी सम्भव हो गयी है, तबसे लोग यह बात भूल गये हैं कि अपनी चीजको काममें लाना मनुष्यका स्वाभाविक अधिकार है जो अधिकार मनुष्योंके बीच सदासे कायम रहा है।

कोई कारण नहीं कि लोग सङ्गठित पशुबल यानी सरकारोंके बिना अपने जीवनकी सुव्यवस्था न कर सकें।

घोड़े और बैलोंको समझदार मनुष्योंके पशुबलके नीचे रहना पड़ता है, परन्तु मनुष्य मनुष्योंके पशुबलसे क्यों शासित हों, जो उनके ही समान हैं। कुछ आदमी किसी समय शक्ति पा गये हैं तो उन आदमियोंके अधीन दूसरे आदमी क्यों रहें। इस बातका

क्या सबूत है कि जो दूसरोंपर पशुबल दिखाना चाहते हैं, वे अधिक बुद्धिमान् हैं ?

जो मनुष्योंपर पशुबलका प्रयोग करना चाहते हैं, वे अधिक तो क्या—बहुत कम बुद्धिमान् हैं। शासन करनेके लिये जो लोग पैतृक अधिकार रखते हैं या चुनावमें आ जाते हैं, वे सबसे बुद्धिमान् हैं यह बात नहीं। बहुधा यह बात देखनेमें आती है कि जो अन्तःकरणकी कम परवा करनेवाले और नैतिक बल-शून्य हैं, वही शक्ति पा जाते हैं।

लोग प्रश्न करते हैं कि मनुष्य सरकारों, यानी सङ्गठित पशुबलके बिना किस तरह रह सकते हैं। इसके विपरीत यह प्रश्न किया जाना चाहिये कि लोग समझदार होकर भी सामाजिक बन्धनका कारण पशुबल क्यों माने बैठे हैं और परस्परकी सहायताका सिद्धान्त क्यों नहीं स्वीकार करते।

मनुष्य यदि समझदार नहीं, तो उन्हें एक दूसरेके बन्धनमें रहनेके लिये पशुबलकी आवश्यकता पड़ेगी। कोई कारण नहीं कि कुछ लोग उसे काममें लायें और कुछ नहीं। उस दशामें सरकारोंका अस्तित्व ठीक नहीं। यदि वे समझदार हैं, तो उनका पारस्परिक सम्बन्ध पशुबलके आधारपर [illegible]

इस दशामें भी सरकारी अस्तित्वका समर्थन [illegible]

(१२)

[illegible]नाश कैसे

कानून गुलाम[illegible] और [illegible]

है। इसलिये सरकारोंके नाशसे ही गुलामी मिट सकती है। सरकारोंका नाश किस तरह किया जाये ?

अबतक मारकाटसे सरकारोंको नष्ट करनेकी जो चेष्टा हुई है, उसका यही परिणाम हुआ है कि एककी जगहपर दूसरी सरकार स्थापित हो गयी है। नयी सरकार पुरानीसे भी अधिक दयाशून्य निकली।

सरकारोंको मिटानेके लिये पहले जमानेमें मारकाटसे काम लिया गया। साम्यवादी कल-कारखानों और जमीनको मारकाटद्वारा ही सार्वजनिक सम्पत्ति बनाना चाहते हैं और समझते हैं कि मारकाट ही नयी व्यवस्थाकी रक्षा कर सकेगी। पुराने जमानेमें मारकाटसे पशुबल दूर करनेकी चेष्टा लोगोंको उससे मुक्त न कर सकी और न भविष्यमें ही वह ऐसा कर सकेगी। इसलिये मारकाटसे गुलामीका भी अन्त नहीं हो सकता। ऐसा अनुमान स्वाभाविक भी है।

जब किसीसे उसकी इच्छाके विपरीत काम कराया जाता है तो मारकाटकी धमकी दी जाती है। अपनी इच्छाके विपरीत दूसरेकी इच्छा पूर्ण करना गुलामी है। जबतक किसीको किसीकी इच्छाके विपरीत काम करनेके लिये बाध्य किया जाता है, तबतक मारकाटसे काम लेना पड़ता है। इसलिये मारकाटके साथ गुलामी रहनी स्वाभाविक है।

मारकाटसे गुलामी नष्ट करनेकी चेष्टा आगसे आग बुझाने,

पानीसे पानी रोकने या एक नया छेद बनाकर दूसरा छेद बन्द करनेके समान है ।

गुलामीसे बचनेका यदि कोई मार्ग है, तो मारकाटसे काम न लेकर उन कारणोंको दूर करना चाहिये जो सरकारी मारकाटको सम्भव बनाये हुए हैं। सरकारी मारकाट सदासे इसी कारण जारी रही है कि कुछ थोड़ेसे आदमी सशस्त्र रहते हैं जब कि अधिकांश मनुष्य अस्त्रहीन रहते हैं या थोड़ेसे आदमी अच्छी तरह अस्त्रसज्जित रहते हैं और अधिकांश मनुष्य उतनी अच्छी तरह हथियारबन्द नहीं होते ।

जितनी विजय प्राप्त हुई है, सब इसी कारण हुई और हो रही है। इसी तरह शान्तिकालमें सभी सरकारें अपनी प्रजाको काबूमें रखती हैं। कुछ लोग इसीसे दूसरोंपर शासन किया करते हैं कि वे दूसरोंकी अपेक्षा अधिक अस्त्रशस्त्र सम्पन्न रहते हैं।

पुराने जमानेमें जो हथियारबन्द अस्त्रहीन मनुष्योंपर आक्रमण किया करते थे, वे लूटमें जो कुछ पाते थे, आपसमें अपनी वीरताके अनुसार बांट लिया करते थे। आजकल जो श्रमजीवी हथियारबन्द होकर निरस्त्र जनतापर आक्रमणकर उसे लूटते या अधिकारमें करते हैं, वह अपने लिये नहीं, बल्कि उन लोगोंके लिये जो स्वयं युद्धमें भाग नहीं लेते ।

पुराने जमानेके आक्रमणकारियों और आजकलकी सरकारोंके बीच यह भेद है कि आक्रमणकारी अपने सैनिकोंके साथ

निरस्त्र लोगोंपर चढ़ाई किया करते थे और स्वयं अस्त्र-प्रयोगकर लोगोंको मारते और वशमें करते थे। आजकल सरकारें स्वयं यह काम नहीं करतीं, परन्तु दूसरोंसे कराती हैं जो स्वयं जनताके ही आदमी होते हैं और मारकाटकी शिक्षा प्राप्तकर अमानुषिक अत्याचार करनेवाले बनाये जाते हैं। पहले जमानेमें वीरता दिखाकर मारकाट की जाती थी, आजकल धोखे से की जाती है।

पहले जमानेमें मारकाटसे मारकाट बन्द की जा सकती थी, क्योंकि वीरता दिखायी जाती थी। आजकल धोखेबाजीसे मारकाट की जाती है इसलिये उसे रोकनेके लिये मारकाटकी जरूरत नहीं; क्योंकि जो लोग मारकाट कराते हैं, वे स्वयं तो मैदानमें आते नहीं। उस धोखेको खोलनेकी जरूरत है जिसके कारण लोग दूसरोंके कहनेपर अपने ही भाइयोंको मारनेके लिये तैयार होते हैं। उस धोखेबाजीको खोलना है जिसके कारण कुछ थोड़ेसे आदमी ज्यादा आदमियोंपर दबाव कायम किये हैं।

जो थोड़ेसे आदमी अधिकांश आदमियोंपर अधिकार रखते हैं, वे अपने पूर्वजोंसे शक्ति पाते हैं और फिर अधिकांश मनुष्योंसे कहते हैं कि तुम लोग संख्यामें अधिक हो; परन्तु तुम सब मूर्ख और अशिक्षित हो, अपना शासन आप नहीं कर सकते और न अपने सार्वजनिक कामोंको ही संभाल सकते हो। इसलिये इन सब जिम्मेदारियोंको हम अपने ऊपर लिये लेते हैं। हम तुम्हारी रक्षा बाहरी शत्रुओंसे करेंगे और भीतरी शान्ति भी मङ्ग

न होने देंगे। हम तुम्हारे लिये न्यायालय, शिक्षालय खोलेंगे। रेल, तार और सड़कोंकी व्यवस्था करेंगे। यानी तुम्हारे हितकी ओर ध्यान देंगे। इन सब सेवाओंके लिये तुम्हें थोड़ी-सी मांग पूरी करनी होगी। अपनी आयका कुछ भाग हमारे अधिकारमें दे देना होगा और तुम स्वयं अपनी रक्षा और सरकारकी रक्षाके लिये सेनामें भर्ती होगे।

बहुतसे आदमी सरकारोंके भुलावेमें आकर उनकी शर्तें स्वीकार कर लेते हैं। इसलिये नहीं कि उन्होंने शर्तोंके भले बुरे परिणामपर अच्छी तरह विचार कर लिया है। उन्हें इस विचारका तो अवसर ही नहीं मिला। वे केवल इसीलिये शर्तें स्वीकार कर लेते हैं कि बचपनसे उन्होंने इन शर्तोंमें रहना सीख लिया है।

यदि किसीको इन शर्तोंको स्वीकार करनेमें सन्देह होता है तो वह अपने सम्बन्धमें विचार करता है और शर्तें न माननेपर जो दण्ड भोगना होगा, उसका अनुमानकर शर्तें मान लेता है। हरएक आदमी चाहता है कि सम्भव हो तो इन शर्तोंसे व्यक्तिगत लाभ उठाया जाये। हरएक आदमी यह समझकर अपनी आमदनीका कुछ भाग करके रूपमें चुकाने लगता है और सैनिक सेवा स्वीकार कर लेता है कि इससे हमारी विशेष हानि नहीं।

ज्योंही सरकारें धन और सैनिक पा जाती हैं, वे बाहरी शत्रुओं और भीतरी अशान्तिसे जनताकी रक्षा करनेकी अपेक्षा पड़ोसी राष्ट्रोंको लड़नेके लिये उकसाया करती हैं और लड़ाइयां

छोड़ती हैं। वे जनताका हितसाधन तो करती नहीं, परन्तु जनताकी हानि करती हैं।

पुरानी कहानियोंमें एक कहानी मिलती है जिसमें बताया गया है कि एक यात्री किसी निर्जन टापूमें जा पहुंचा था। उसे जलके किनारे एक छोटासा आदमी बैठा मिला जिसकी टांगें सिकुड़ी हुई थीं। बूढे आदमीने उस यात्रीसे प्रार्थना की कि मुझे अपने कन्धेपर रखकर नदी पार करा दो। ज्योंही यात्रीने उसे अपने कन्धोंपर बैठाया, उसने अपनी टांगें निकालकर उसकी गर्दनकी दोनों ओर डाल दीं और फिर उतरनेके लिये तैयार न हुआ। यात्रीको अपने अधिकारमें पाकर बूढा आदमी उसे जिधर चाहता, ले जाता और स्वयं पेड़ोंसे फल तोड़कर खाता। बेचारे यात्रीको फलकी जगह गालियां देता।

जो लोग सरकारोंको धन और सिपाही देते हैं उनकी दशा उस यात्रीके ही समान होती है। रुपया पाकर सरकारें तोपें तैयार कराती हैं, सैनिक अधिपति किरायेपर रखकर उन्हें अमानुषिक काम करनेके लिये आज्ञा देती हैं और यही सैनिक अधिपति प्रबन्धका ढोंग रचकर सेनामे भर्ती होनेवालेको सैनिक बनाते हैं। प्रबन्धका यह अर्थ है कि जो लोग सेनाओंमें रहते हैं वे मनुष्यताके सभी गुणोंसे धीरे धीरे वञ्चित हो जायें। वे अपनी स्वतन्त्रता भी खो बैठते हैं। वे अपने मालिकोंके हाथमें लोगोंको मार डालनेकी मेशीनें बन जाते हैं। इन्हीं सेनाओंमें सब धोखेबाजीका सार भरा हुआ है जिसे काममें

लाकर सरकारें अधिकांश जनताको वशमें किये रहती हैं। जब सरकारोंके पास मारकाटका ऐसा उत्तम साधन रहता है, तब वे समस्त जनताको अपने अधिकारमें समझती हैं। वे फिर जनताको अपने अधिकारसे नहीं मुक्त होने देतीं और उसपर तरह तरहके अत्याचार करने लग जाती हैं। वे किरायेके आदमी नियुक्तकर जनताको इस प्रकारकी धार्मिक और देशभक्तिपूर्ण शिक्षा देती हैं कि वह उन्हें पूज्य मानने लगती है और उनपर भक्ति दिखाना कर्तव्य समझती है। जनता उनपर भक्ति दिखाती है जो उसपर अत्याचार करनेवाले हैं और उसे गुलामीमें जकड़नेवाले हैं।

सभी राजा, बादशाह, राष्ट्रपति प्रबन्धके बड़े भक्त होते हैं और समय समयपर सेनाओंकी कवायद आदि देखा करते हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि इस धूमसे प्रबन्धकी रक्षा होती है और प्रबन्धपर ही तो उनका अस्तित्व निर्भर करता है। इसीसे वे प्रबन्धके बड़े भक्त होते हैं। नियन्त्रित सेनाओंकी सहायतासे वे स्वयं हाथ न उठाकर भीषणसे भीषण अत्याचार कर सकते हैं। इन अत्याचारोंकी सम्भावना ही लोगोंको सदा भयभीत बनाये रहती है।

इसलिये सरकारोंको नष्ट करनेका उपाय मारकाट नहीं, बल्कि सब धोखेबाजीकी पोल खोल देना है। लोगोंको अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि एककी दूसरेसे रक्षा करनेके लिये सरकारोंकी आवश्यकता नहीं है और भिन्न भिन्न देशोंमें लड़ाई

करानेवाली सरकारें ही हैं। सेनाएं इसी लिये रखी जाती हैं कि कुछ थोड़ेसे आदमी ज्यादा आदमियोंपर शासन कर सकें। सेनाएं लोगोंके लिये अनावश्यक ही नहीं, बल्कि उनका सबसे अधिक अहित करनेवाली हैं। वे ही तो गुलामी बढ़ानेवाली हैं। सरकारें जिस नियम-पाबन्दीपर इतना जोर दिया करती हैं वही मनुष्यके लिये सबसे बड़ा अपराध है। सरकारोंके बुरे उद्देश्योंका यही प्रत्यक्ष प्रमाण है। नियम और कानूनोंकी पाबन्दीसे मनुष्यकी स्वतन्त्रता छिन जाती है और मनुष्य उन कामोंको करनेके लिये तैयार हो जाता है जो साधारण अवस्थामें वह कभी करनेको तैयार न होता।

आत्मरक्षा और राष्ट्रीयताके लिये जो लड़ाइयां लड़ी जाती हैं उनके लिये भी किसी प्रकारके नियन्त्रणकी आवश्यकता नहीं। दक्षिण अफ्रीकाके बोर यह बात स्पष्ट रूपसे बता चुके हैं। प्रबन्धकी आवश्यकता भयानकसे भयानक अपराध करनेके लिये होती है। जिस तरह कहानीमें बुड्ढे आदमीने यात्रीके साथ बर्ताव किया था, उसी तरह सरकारें भी आचरण किया करती हैं। बुड्ढेने यात्रीकी हंसी की और उसका अपमान किया, क्योंकि वह जानता था कि जबतक कन्धोंपर सवार हूं, मैं इस आदमीको अपने वशमें किये हूं।

इसी प्रकार धोखा देकर थोड़ेसे अयोग्य आदमी जो अपनेको सरकार बताया करते हैं, अधिकांश मनुष्योंपर अधिकार रखते हैं। वे उन्हें निर्धन ही नहीं बनाते, बल्कि उनकी पीढ़ियों-

लाकर सरकारें अधिकांश जनताको वशमें किये रहती हैं। जब सरकारोंके पास मारकाटका ऐसा उत्तम साधन रहता है, तब वे समस्त जनताको अपने अधिकारमें समझती हैं। वे फिर जनताको अपने अधिकारसे नहीं मुक्त होने देतीं और उसपर तरह तरहके अत्याचार करने लग जाती हैं। वे किरायेके आदमी नियुक्तकर जनताको इस प्रकारकी धार्मिक और देशभक्तिपूर्ण शिक्षा देती हैं कि वह उन्हें पूज्य मानने लगती है और उनपर भक्ति दिखाना कर्तव्य समझती है। जनता उनपर भक्ति दिखाती है जो उसपर अत्याचार करनेवाले हैं और उसे गुलामीमें जकड़नेवाले हैं।

सभी राजा, बादशाह, राष्ट्रपति प्रबन्धके बड़े भक्त होते हैं और समय समयपर सेनाओंकी कवायद आदि देखा करते हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि इस धूमसे प्रबन्धकी रक्षा होती है और प्रबन्धपर ही तो उनका अस्तित्व निर्भर करता है। इसीसे वे प्रबन्धके बड़े भक्त होते हैं। नियन्त्रित सेनाओंकी सहायतासे वे स्वयं हाथ न उठाकर भीषणसे भीषण अत्याचार कर सकते हैं। इन अत्याचारोंकी सम्भावना ही लोगोंको सदा भयभीत बनाये रहती है।

इसलिये सरकारोंको नष्ट करनेका उपाय मारकाट नहीं, बल्कि सब धोखेबाजीकी पोल खोल देना है। लोगोंको अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि एककी दूसरेसे रक्षा करनेके लिये सरकारोंकी आवश्यकता नहीं है और भिन्न भिन्न देशोंमें लड़ाई

करानेवाली सरकारें ही हैं। सेनाएं इसी लिये रखी जाती हैं कि कुछ थोड़ेसे आदमी ज्यादा आदमियोंपर शासन कर सकें। सेनाएं लोगोंके लिये अनावश्यक ही नहीं, बल्कि उनका सबसे अधिक अहित करनेवाली हैं। वे ही तो गुलामी बढ़ानेवाली हैं। सरकारें जिस नियम-पाबन्दीपर इतना जोर दिया करती हैं वही मनुष्यके लिये सबसे बड़ा अपराध है। सरकारोंके बुरे उद्देश्योंका यही प्रत्यक्ष प्रमाण है। नियम और कानूनोंकी पाबन्दीसे मनुष्यकी स्वतन्त्रता छिन जाती है और मनुष्य उन कामोंको करनेके लिये तैयार हो जाता है जो साधारण अवस्थामें वह कभी करनेको तैयार न होता।

आत्मरक्षा और राष्ट्रीयताके लिये जो लड़ाइयां लड़ी जाती हैं उनके लिये भी किसी प्रकारके नियन्त्रणकी आवश्यकता नहीं। दक्षिण अफ्रीकाके बोर यह बात स्पष्ट रूपसे बता चुके हैं। प्रबन्धकी आवश्यकता भयानकसे भयानक अपराध करनेके लिये होती है। जिस तरह कहानीमें बुड्ढे आदमीने यात्रीके साथ बर्ताव किया था, उसी तरह सरकारें भी आचरण किया करती हैं। बुड्ढेने यात्रीकी हंसी की और उसका अपमान किया, क्योंकि वह जानता था कि जबतक कन्धोंपर सवार हूं, मैं इस आदमीको अपने वशमें किये हूं।

इसी प्रकार धोखा देकर थोड़ेसे अयोग्य आदमी जो अपनेको सरकार बताया करते हैं, अधिकांश मनुष्योंपर अधिकार रखते हैं। वे उन्हें निर्धन ही नहीं बनाते, बल्कि उनकी पीढ़ियों-

लाकर सरकारें अधिकांश जनताको वशमें किये रहती हैं। जब सरकारोंके पास मारकाटका ऐसा उत्तम साधन रहता है, तब वे समस्त जनताको अपने अधिकारमें समझती हैं। वे फिर जनताको अपने अधिकारसे नहीं मुक्त होने देतीं और उसपर तरह तरहके अत्याचार करने लग जाती हैं। वे किरायेके आदमी नियुक्तकर जनताको इस प्रकारकी धार्मिक और देशभक्तिपूर्ण शिक्षा देती हैं कि वह उन्हें पूज्य मानने लगती है और उनपर भक्ति दिखाना कर्तव्य समझती है। जनता उनपर भक्ति दिखाती है जो उसपर अत्याचार करनेवाले हैं और उसे गुलामीमें जकड़नेवाले हैं।

सभी राजा, बादशाह, राष्ट्रपति प्रबन्धके बड़े भक्त होते हैं और समय समयपर सेनाओंकी कवायद आदि देखा करते हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि इस धूमसे प्रबन्धकी रक्षा होती है और प्रबन्धपर ही तो उनका अस्तित्व निर्भर करता है। इसीसे वे प्रबन्धके बड़े भक्त होते हैं। नियन्त्रित सेनाओंकी सहायतासे वे स्वयं हाथ न उठाकर भीषणसे भीषण अत्याचार कर सकते हैं। इन अत्याचारोंकी सम्भावना ही लोगोंको सदा भयभीत बनाये रहती है।

इसलिये सरकारोंको नष्ट करनेका उपाय मारकाट नहीं, बल्कि सब धोखेबाजीकी पोल खोल देना है। लोगोंको अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि एककी दूसरेसे रक्षा करनेके लिये सरकारोंकी आवश्यकता नहीं है और भिन्न भिन्न देशोंमें लड़ाई

नेवाली सरकारें ही हैं। सेनाएं इसी लिये रखी जाती हैं कि थोड़ेसे आदमी ज्यादा आदमियोंपर शासन कर सकें। सेनाएं कि लिये अनावश्यक ही नहीं, बलिक उनका सबसे अधिक त करनेवाली हैं। वे ही तो गुलामी बढ़ानेवाली हैं। सरकारें नियम-पाबन्दीपर इतना जोर दिया करती हैं वही मनुष्यके सबसे बड़ा अपराध है। सरकारोंके बुरे उद्देश्योंका यही क्ष प्रमाण है। नियम और कानूनोंकी पाबन्दीसे मनुष्यकी त्रता छिन जाती है और मनुष्य उन कामोंको करनेके लिये र हो जाता है जो साधारण अवस्थामें वह कभी करनेको र न होता।

आत्मरक्षा और राष्ट्रीयताके लिये जो लड़ाइयां लड़ी जाती हैं लिये भी किसी प्रकारके नियन्त्रणकी आवश्यकता नहीं। ण अफ्रीकाके बोर यह बात स्पष्ट रूपसे बता चुके हैं। नकी आवश्यकता भयानकसे भयानक अपराध करनेके लिये है। जिस तरह कहानीमें बुड्ढे आदमीने यात्रीके साथ व किया था, उसी तरह सरकारें भी आचरण किया करती बुड्ढेने यात्रीकी हंसी की और उसका अपमान किया, के वह जानता था कि जबतक कन्धोंपर सवार हूं, मैं इस त्रीको अपने वशमें किये हूं।

इसी प्रकार धोखा देकर थोड़ेसे अयोग्य आदमी जो अपनेको कार बताया करते हैं, अधिकांश मनुष्योंपर अधिकार है। वे उन्हें निर्धन ही नहीं बनाते, बल्कि उनकी पीढ़ियों-

कालकोठरियों और फांसी तथा गोलियोंकी बौछारके कारण भीषणतामें निर्दयी डाकुसे बढ़ जाती हैं।

देवमन्दिरोंकी तरह सरकारोंके प्रति सदैव ही पूज्य भाव रखना पड़ता है। जबतक लोग नहीं जानते कि सरकारें क्या हैं, तबतक उनके वैसे भाव रहते भी हैं। जबतक वह सरकारके अधीन होकर जीवन व्यतीत कर रहा है, वह स्वाभिमानके कारण यही कहा करता है कि हम ऐसी संस्थाके अधीन हैं, जो बड़ी पवित्र है। जब वह समझने लगता है कि उसका नियन्त्रण करनेवाली संस्था पवित्र नहीं है, बल्कि धोखेकी टट्टी है, जो कुछ अयोग्य मनुष्योंद्वारा खड़ी की गयी है जो अपने स्वार्थके लिये पथप्रदर्शक बने हुए हैं, तब वह इन लोगोंके प्रति घृणा प्रकट किये बिना नहीं रह सकता। उसका इन लोगोंसे जितना ही अधिक सम्बन्ध होता है उतनी ही अधिक उसकी घृणा होती है।

लोग जब समझ जाते हैं कि सरकारें क्या हैं, तब उनके प्रति घृणा प्रकट हुए बिना नहीं रह सकते।

लोगोंको यह बात अच्छी तरह समझनी चाहिये कि वे अपनी आमदनीका कुछ हिस्सा देकर या सेनामें नौकरीकर सरकारका उसके अत्याचारोंमें जो हाथ बटाते हैं वह कोई साधारण बात नहीं है जिसकी उपेक्षा कर दी जाये, जैसी कि बहुधा दी जाती है। दोनों काम भाग लेनेवालों और उनके अन्य लिये हानिकारक ही नहीं, बल्कि उन अनेक

ती तैयारीमें शामिल हैं जो सरकारें हमेशा सेनाएं रखकर करनेको तैयार रहती हैं।

यद्यपि सरकारें बड़ी चेष्टा किया करती हैं कि लोगोंपर उनका जादूके समान असर रहे और लोग निद्रावस्थामें रहकर उनके असली भयानक रूपको न समझ लें, परन्तु उनके प्रति श्रद्धाभक्ति घटती जा रही है। अब समय आ गया है, जब कि लोग यह समझने लग जायें कि सरकारें अनावश्यक ही नहीं, हानिकारक और पापपूर्ण संस्थाएं हैं। उनमें किसी भले आदमीको कभी भाग न लेना चाहिये। उनसे जो भी लाभ प्राप्त होता हो, उसे कभी न स्वीकार करना चाहिये।

ज्यों ही लोगोंको यह बात मान्य हो जायेगी, वे सरकारोंको धन और सिपाही देना बन्द कर देंगे। जब अधिकांश ऐसा करने लग जायेंगे, तब यह धोखाबाजी धूलमें मिल जो लोगोंको गुलामीमें जकड़ा करती है।

इसी ढङ्गसे ही लोग गुलामीसे छुटकारा पा

(१४)

हरएक आदमी क्या

जो लोग अपनी अवस्थासे असन्तुष्ट हो सम्भव नहीं समझते या बदलना ही सब बातें जीवनमें काम आने योग्य ही समझो हों।

सम्पन्न श्रेणीके लोग कहेंगे कि हम लोग क्या करें, यह बताइये। समाजका सङ्गठन किस ढङ्गसे होना चाहिये।

जिस समय श्रमजीवियोंकी अवस्था सुधारनेका प्रश्न आता है सम्पन्न श्रेणीके लोग जो अपने जीवनमें परिवर्तन नहीं करना चाहते और दूसरोंकी मिहनतसे लाभ उठाना चाहते हैं, तरह तरहके उपाय पेश करने लग जायेंगे, परन्तु वे एक असली काम न करेंगे जिससे मनुष्योंका कल्याण हो। वे उस बुराईका परित्याग न करेंगे जो कर रहे हैं। वे जो बुराई कर रहे हैं वह स्पष्ट है। वे लोगोंसे उनकी इच्छाके विरुद्ध जबर्दस्ती काम ही नहीं लेते, बल्कि जबर्दस्ती काम लेनेके सिद्धान्तको कायम किये हुए हैं। उनको यह न करना चाहिये।

श्रमजीवी समझते हैं कि हमारी बुरी अवस्था इस लिये है कि हमारे स्वामी हमें कम मजूरी देते हैं और आप स्वामी बने बैठे हैं। वे लोग यह नहीं समझते, कि बुराईका कारण हम ही हैं और यदि हम चाहें तो उस बुराईसे अलग हो सकते हैं और अलग होकर अपना और अपने भाइयोंका कल्याण कर... उन उपायोंसे अपनी अनेक इच्छाएं पूर्ण करना चाहते... उन्हें गुलामीमें डाला है और अपनी नर... लिये मानुषिक गौरव तथा स्वतन्त्रता... और पापपूर्ण कार्य करते हुए...

सम्पन्न श्रेणीके लोग कहेंगे कि हम लोग क्या करें, यह बताइये। समाजका सङ्गठन किस ढङ्गसे होना चाहिये।

जिस समय श्रमजीवियोंकी अवस्था सुधारनेका प्रश्न आता सम्पन्न श्रेणीके लोग जो अपने जीवनमें परिवर्तन नहीं चाहते और दूसरोंकी मिहनतसे लाभ उठाना चाहते हैं, त के उपाय पेश करने लग जायेंगे, परन्तु वे एक करेंगे, जिससे मनुष्योंका कल्याण हो। वे उस त्याग न करेंगे जो कर रहे हैं। वे जो बुराई कर है। वे लोगोंसे उनकी इच्छाके विरुद्ध लेते, बल्कि जबर्दस्ती काम लेनेके हैं। उनको यह न करना चाहिये।

श्रमजीवी समझते हैं कि हमारी बुरी हमारे स्वामी हमें कम मजूरी देते हैं और वे लोग यह नहीं समझते, कि बु यदि तो उस बुराईसे अपने अनेक डाला है और गौरव तथा कार्य करने लग वस्तुएं तैयार करते हैं सरकारोंका समर्थन करते

उनकी सेनाओंमें भर्ती होते हैं। इस तरह अपनी गुलामी बढ़ाते हैं।

अवस्थाके सुधारके लिये सम्पन्न मनुष्यों और श्रमजीवियों-को समझ लेना होगा कि अपने हितकी रक्षा करनेसे ही काम न चलेगा। सेवामें त्यागकी आवश्यकता हुआ करती है। इसलिये जो अपना और अपने भाइयोंका कल्याण चाहते हैं, उन्हें अपने जीवनका ढङ्ग ही न बदलना होगा, बल्कि उन लाभोंसे हाथ धोना पड़ेगा जो वे प्राप्त किये चले आ रहे हैं। उन्हें भीषण युद्धके लिये भी तैयार रहना चाहिये जो सरकारोंके विरुद्ध नहीं, बल्कि अपने और अपने परिवारके विरुद्ध छिड़ा दिखाई देगा। ...रकी शर्तें पूरी न करनेसे जो कष्ट दिये जायेंगे, उन कष्टोंको ...के लिये भी तैयार रहना चाहिये।

...या करना चाहिये, इस प्रश्नका उत्तर स्पष्ट और सरल ...हरएक आदमीके लिये काममें लाने योग्य भी है। ...उन लोगोंको सन्तुष्ट न करेगा जो धनवानोंकी ...हैं कि हमें दूसरेको शिक्षा देनी और ...सुधारकी आवश्यकता नहीं।

सम्पन्न श्रेणीके लोग कहेंगे कि हम लोग क्या करें, यह बताइये। समाजका सङ्गठन किस ढङ्गसे होना चाहिये।

जिस समय श्रमजीवियोंकी अवस्था सुधारनेका प्रश्न आता है सम्पन्न श्रेणीके लोग जो अपने जीवनमें परिवर्तन नहीं करना चाहते और दूसरोंकी मिहनतसे लाभ उठाना चाहते हैं, तरह तरहके उपाय पेश करने लग जायेंगे, परन्तु वे एक असली काम न करेंगे जिससे मनुष्योंका कल्याण हो। वे उस बुराईका परित्याग न करेंगे जो कर रहे हैं। वे जो बुराई कर रहे हैं वह स्पष्ट है। वे लोगोंसे उनकी इच्छाके विरुद्ध जबर्दस्ती काम ही नहीं लेते, बल्कि जबर्दस्ती काम लेनेके सिद्धान्तको कायम किये हुए हैं। उनको यह न करना चाहिये।

श्रमजीवी समझते हैं कि हमारी बुरी अवस्था इस लिये है कि हमारे स्वामी हमें कम मजूरी देते हैं और आप स्वामी बने बैठे हैं। वे लोग यह नहीं समझते, कि बुराईका कारण हम ही हैं और यदि हम चाहें तो उस बुराईसे अलग हो सकते हैं और अलग होकर अपना और अपने भाइयोंका कल्याण कर सकेंगे। वे उन उपायोंसे अपनी अनेक इच्छाएं पूर्ण करना चाहते हैं जिन्होंने उन्हें गुलामीमें डाला है और अपनी नयी आदतोंको पूरा करनेके लिये मानुषिक गौरव तथा स्वतन्त्रताको त्यागकर अपमानजनक और पापपूर्ण कार्य करने लग जाते हैं। वे हानिकारक आवश्यक वस्तुएं तैयार करते हैं और सबसे खराब बात तो यह है कि सरकारोंका समर्थन करते हैं। उन्हें कर देते और

उनकी सेनाओंमें भर्ती होते हैं। इस तरह अपनी गुलामी बढ़ाते हैं।

अवस्थाके सुधारके लिये सम्पन्न मनुष्यों और श्रमजीवियो-को समझ लेना होगा कि अपने हितकी रक्षा करनेसे ही काम न चलेगा। सेवामें त्यागकी आवश्यकता हुआ करती है। इसलिये जो अपना और अपने भाइयोंका कल्याण चाहते हैं, उन्हें अपने जीवनका ढङ्ग ही न बदलना होगा, बल्कि उन लाभोंसे हाथ धोना पड़ेगा जो वे प्राप्त किये चले आ रहे हैं। उन्हें भीषण युद्धके लिये भी तैयार रहना चाहिये जो सरकारोंके विरुद्ध नहीं, बल्कि स्वयं अपने और अपने परिवारके विरुद्ध छिड़ा दिखाई देगा। सरकारकी शर्तें पूरी न करनेसे जो कष्ट दिये जायेंगे, उन कष्टोंको भोगनेके लिये भी तैयार रहना चाहिये।

हमें क्या करना चाहिये, इस प्रश्नका उत्तर स्पष्ट और सरल है। वह हरएक आदमीके लिये काममें लाने योग्य भी है। यद्यपि यह उत्तर उन लोगोंको सन्तुष्ट न करेगा जो धनवानोंकी तरह यह धारणा बनाये बैठे हैं कि हमें दूसरेको शिक्षा देनी और दूसरेका सुधार करना है। अपने सुधारकी आवश्यकता नहीं। सब कसूर पैसेवालोंका ही है। वे जिन चीजोंको काममें ला रहे हैं उनसे छीन ली जायें। इस तरहकी व्यवस्था की जाये कि इस समय केवल धनी ही जिन चीजोंको काममें ला रहे हैं, वे सबके काम आने लगें। उत्तर स्पष्ट इसलिये है, कि वह उसका सुधार चाहता है जिसपर हम सबका पूरा अधिकार है और

सम्पन्न श्रेणीके लोग कहेंगे कि हम लोग क्या करें, यह बताइये। समाजका सङ्गठन किस ढङ्गसे होना चाहिये।

जिस समय श्रमजीवियोंकी अवस्था सुधारनेका प्रश्न आता है सम्पन्न श्रेणीके लोग जो अपने जीवनमें परिवर्तन नहीं करना चाहते और दूसरोंकी मिहनतसे लाभ उठाना चाहते हैं, तरह तरह के उपाय पेश करने लग जायेंगे, परन्तु वे एक असली काम न करेंगे जिससे मनुष्योंका कल्याण हो। वे उस बुराईका परित्याग न करेंगे जो कर रहे हैं। वे जो बुराई कर रहे हैं वह स्पष्ट है। वे लोगोंसे उनकी इच्छाके विरुद्ध जबर्दस्ती काम ही नहीं लेते, बल्कि जबर्दस्ती काम लेनेके सिद्धान्तको कायम किये हुए हैं। उनको यह न करना चाहिये।

श्रमजीवी समझते हैं कि हमारी बुरी अवस्था इस लिये है कि हमारे स्वामी हमें कम मजूरी देते हैं और आप स्वामी बने बैठे हैं। वे लोग यह नहीं समझते, कि बुराईका कारण हम ही हैं और यदि हम चाहें तो उस बुराईसे अलग हो सकते हैं और अलग होकर अपना और अपने भाइयोंका कल्याण कर सकेंगे। वे उन उपायोंसे अपनी अनेक इच्छाएं पूर्ण करना चाहते हैं जिन्होंने उन्हें गुलामीमें डाला है और अपनी नयी आदतोंको पूरा करनेके लिये मानुषिक गौरव तथा स्वतन्त्रताको त्यागकर अपमानजनक और पापपूर्ण कार्य करने लग जाते हैं। वे हानिकारक आवश्यक वस्तुएं तैयार करते हैं और सबसे खराब बात तो यह है कि सरकारोंका समर्थन करते हैं। उन्हें कर देते और

उनकी सेनाओंमें भर्ती होते हैं। इस तरह अपनी गुलामी बढ़ाते हैं।

अवस्थाके सुधारके लिये सम्पन्न मनुष्यों और श्रमजीवियोंको समझ लेना होगा कि अपने हितकी रक्षा करनेसे ही काम न चलेगा। सेवामें त्यागकी आवश्यकता हुआ करती है। इसलिये जो अपना और अपने भाइयोंका कल्याण चाहते हैं, उन्हें अपने जीवनका ढङ्ग ही न बदलना होगा, बल्कि उन कामोंसे हाथ धोना पड़ेगा जो वे प्राप्त किये चले आ रहे हैं। उन्हें भीषण युद्धके लिये भी तैयार रहना चाहियें जो सरकारोंके विरुद्ध नहीं, बल्कि स्वयं अपने और अपने परिवारके विरुद्ध छिड़ा दिखाई देगा। सरकारकी शर्तें पूरी न करनेसे जो कष्ट दिये जायेंगे, उन कष्टोंको भोगनेके लिये भी तैयार रहना चाहिये।

हमें क्या करना चाहिये, इस प्रश्नका उत्तर स्पष्ट और सरल है। वह हरएक आदमीके लिये काममें लाने योग्य भी है। यद्यपि यह उत्तर उन लोगोंको सन्तुष्ट न करेगा जो धनवानोंकी तरह यह धारणा बनाये बैठे हैं कि हमें दूसरेको शिक्षा देनी और दूसरेका सुधार करना है। अपने सुधारकी आवश्यकता नहीं। सब कसुर पैसेवालोंका ही है। वे जिन चीजोंको काममें ला रहे हैं उनसे छीन ली जायें। इस तरहकी व्यवस्था की जाये कि इस समय केवल धनी ही जिन चीजोंको काममें ला रहे हैं, वे सबके काम आने लगें। उत्तर स्पष्ट इसलिये है, कि वह उसका सुधार चाहता है जिसपर हम सबका पूरा अधिकार है और

वह अपनी अन्तरात्मा है। जो श्रमजीवी या स्वामी अपना ही भला नहीं चाहता, वल्कि दूसरोंका भी उपकार करना चाहता है उसे उस बुराईमें भाग न लेना चाहिये जो गुलामीकी जड़ है। बुराई न करनी पड़े इसलिये उसे स्वेच्छासे भी नहीं और न अनेच्छासे किसी भी सरकारी काममें भाग लेना चाहिये। उसे न तो सैनिक बनना चाहिये और न सेनापति, न मन्त्री, न टैक्स एकत्र करनेवाला, न गवाह, न अवैतनिक मजिस्ट्रेट, न जूरर, न गवर्नर और न प्रतिनिधि सभाका सदस्य ही बनना चाहिये। कहनेका अभिप्राय यह है कि मारकाटसे सम्बन्ध रखनेवाला कोई भी पद स्वीकार न करना चाहिये।

इसके साथ ही अपनी और दूसरेकी भलाई चाहनेवाले व्यक्तिको सरकारका कोई कर स्वेच्छासे न चुकाना चाहिये। न प्रत्यक्ष रूपसे और न अप्रत्यक्ष रूपसे ही चुकाया जाये। जो रुपया करद्वारा एकत्र किया गया है, वह वेतन, पुरस्कार या पेन्शनके रूपमें न स्वीकार करना चाहिये। उसे सरकारी संस्थाओंसे भी लाभ न उठाना चाहिये जो प्रजासे छीने हुए करकी सहायतासे चलायी जाती हैं।

अपनी चीज, जायदाद या सम्पत्तिकी रक्षाके लिये सरकारसे अपील न करनी चाहिये, मामला चलनेपर पैरवी न करनी चाहिये। वही जमीन या धन अपने पास रखना चाहिये जिसके लिये दूसरेका कोई दावा न हो।

लोग कहेंगे कि ऐसा करना तो असम्भव है। सरकारके

किसी कार्यक्रममें भाग न लेनेका यह अर्थ है कि जीना ही नहीं है। जो आदमी सैनिक न बनना चाहेगा उसे जेलकी सजा दी जायेगी। कर न चुकानेवालेको दण्ड दिया जायेगा और उसकी जायदादसे वह कर वसूल किया जायेगा। जिसके पास जीविका-का कोई दूसरा साधन नहीं है, वह सरकारी नौकरी न कर परिवार समेत भूखों मरेगा। यही दशा उस आदमीकी होगी जो अपनी जानमालकी रक्षाके लिये सरकारी सहायता न लेगा। जिन चीजोंसे कर लिया जाता है उन्हें और सरकारी संस्थाओंको काममें न लाना तो असम्भव ही है। प्रायः सभी आवश्यक वस्तुओं-पर कर लगा रहता है। रेल, तार, सडकसे काम न लेना असम्भव ही है।

यह बात बिल्कुल ठीक है कि आजकलके मनुष्य सरकारके किसी भी काममें भाग न लें यह कठिन बात है। चूंकि हरएक आदमी सरकारी काममें किस हदतक भाग लेना बन्द नहीं कर सकता इसका यह अर्थ नहीं कि उससे धीरे धीरे ज्यादा अलग होना सम्भव नहीं। यदि जबर्दस्ती सेनामें भर्ती होनेसे हरएक आदमी इनकार करनेका साहस नहीं करता (यद्यपि ऐसे भी कुछ आदमी हैं और होते रहेंगे) तो भी हरएक आदमी यह तो कर सकता है कि स्वेच्छासे सेना या पुलिसमें भर्ती न हो। सरकारके न्याय या मालगुजारी विभागमें नौकरी न करे। सरकारी नौकरीसे कुछ कम वेतनवाली किसी व्यक्तिकी नौकरी कर ले। हरएक आदमी भू-सम्पत्ति त्यागनेका साहस न करेगा

(यद्यपि ऐसा करनेवाले भी आदमी हैं) परन्तु भू-सम्पत्तिकी बुराइयां समझकर हरएक उसे कम कर सकता है। हरएक आदमी धन या पशुबलसे रक्षाकी आशा रखनेवाले पदार्थोंका परित्याग नहीं कर सकता (कुछ ऐसे भी आदमी हैं जो करते हैं) परन्तु हरएक आदमी अपनी आवश्यकताएं कमकर उन चीजोंको कम कर सकता है, जो दूसरोंकी ईर्षा बढ़ानेवाली हैं। हरएक सरकारी कर्मचारी सरकारी वेतन नहीं छोड़ सकता (यद्यपि कुछ आदमी हैं जो सरकारकी घृणित नौकरीसे भूखे रहना अच्छा समझते हैं) परन्तु हरएक आदमी इसलिये कि मारकाटके कामोंसे कम सम्बन्ध रहे, बड़ीकी जगह छोटी तनख्वाहपर काम करना पसन्द कर सकता है। हरएक आदमी सरकारी शिक्षालयोंका बहिष्कार नहीं कर सकता (यद्यपि बहुतसे करते हैं) परन्तु हरएक आदमी उनकी जगहपर अर्द्ध-सरकारी शिक्षालयोंको तो काममें ला सकता है। जिन चीजोंपर टेक्स लगता है उनका प्रयोग कम कर सकता है और सरकारी संस्थाओं—रेल, तार, डाकका प्रयोग भी कम कर सकता है।

पशुबलपर जो वर्तमान जीवन अवलम्बित है तथा पारस्परिक सहायताके सिद्धान्तपर अवलम्बित व्यवस्थाके बीच बहुतसी सीढ़ियां हैं जिनसे होकर आदर्शको प्राप्त करना पड़ेगा। आदर्शकी ओर उतनी ही अधिक अग्रगति होती है जितना कि मनुष्य मारकाटसे अपना सम्बन्ध कम करता है। उससे कम लाभ उठाता है और उसके लिये अभ्यस्त भी नहीं बनता।

हम यह नहीं जानते और न बतानेका साहस करते हैं, कि किस तरीकेसे धीरे धीरे सरकारोंकी शक्ति घट जायेगी और लोग गुलामीसे मुक्त हो जायेंगे। इस मुक्तिके साथ मनुष्यका जीवन कैसा बनता जायेगा यह भी हम नहीं बता सकते, परन्तु यह हम बता सकते हैं कि उन लोगोंकी अवस्था जीवनके पवित्र सिद्धान्त और अन्तःकरणके अनुकूल होगी जो सरकारी पशुबलका ज्ञान प्राप्तकर उससे लाभ उठाना नहीं चाहते या उसमें भाग नहीं लेना चाहते। उनका जीवन वर्तमान जीवनसे अच्छा होगा जिसमें लोग स्वयं सरकारी मारकाटमें भाग लेते हैं और बहाना यह करते हैं कि सरकारोंके विरुद्ध लड़ाई छेड़े हुए हैं। नयी मारकाटसे पुरानी मारकाट दूर करना चाहते हैं।

प्रधान बात तो यह है कि वर्तमान जीवन-व्यवस्था बुरी है। इस सम्बन्धमें सभी सहमत हैं। बुरी व्यवस्था और गुलामीका कारण सरकारोंका पशुबल है। सरकारी मारकाट दूर करनेका यही मार्ग है कि उसमें भाग न लिया जाये। यह प्रश्न करना ही व्यर्थ है कि सरकारी मारकाटमें भाग न लेना कठिन है या नहीं या इस प्रकार भाग न लेनेसे क्या शीघ्र ही परिणाम दिखाई देगा इत्यादि, क्योंकि लोगोंको गुलामीसे मुक्त करानेका एक ही मार्ग है दूसरा नहीं।

पशुबलकी जगहपर पारस्परिक सहायताका सिद्धान्त कितना और कब काममें आयेगा यह बात जनताकी जागृतिपर निर्भर है। साथ ही उस जनसंख्यापर निर्भर है, जो इस जागृतिको

अपना अङ्ग बनायेगी। हम सब अलग अलग व्यक्ति हैं और इस हैसियतसे मनुष्यताके उद्धारमें उतने ही सहायक हो सकते हैं जितनी हमसे उद्देश्यपूर्ति हो सके। हम उन्नतिके शत्रु भी बन सकते हैं। जिसकी जो इच्छा हो, बने। या तो ईश्वरीय नियमका विरोध करे और बालूपर अपने थोड़ेसे जीवनका कच्चा मकान तैयार करे या ईश्वरीय इच्छाके अनुसार सच्चे जीवनके चिरजीवी और अनन्त आन्दोलनमें सम्मिलित हो जाये।

लेकिन शायद मैं भूल कर रहा हूं। मानुषिक इतिहास-से इस प्रकारके परिणामपर पहुंचना ठीक नहीं और मनुष्य जाति गुलामीसे छुटकारा पानेकी तरफ नहीं बढ़ रही है। शायद यह भी सिद्ध हो सकता है कि मारकाट उन्नतिके लिये आवश्यक साधन है और मारकाट करनेवाली सरकारें जीवनका आवश्यक अङ्ग हैं। यदि सरकारें नष्ट कर दी जायेंगी, तो लोगोंके लिये बड़ी खराबी होगी। यदि जानमालकी रक्षा ही न होगी तो बड़ा अनर्थ होगा।

हम ये सब बातें थोड़ी देरके लिये मान लेते हैं और हम जिस परिणामपर पहुंचे हैं उसे भ्रमपूर्ण बताते हैं, परन्तु मनुष्यताके सम्बन्धमें विचार करनेके सिवा प्रत्येक व्यक्तिको अपने जीवनके प्रश्नका भी तो सामना करना है। जीवन-सम्बन्धी व्यापक सिद्धान्तोंकी बात तो अलग रही, कोई मनुष्य ऐसा काम नहीं कर सकता जो हानिकारक होनेके साथ ही साथ पापपूर्ण भी है।

हमारे जमानेका प्रत्येक सच्चा और ईमानदार आदमी जवाब देगा कि इतिहाससे यह बात सिद्ध की जा सकती है कि व्यक्तियों-की उन्नतिके लिये सरकारकी आवश्यकता है और सरकारका पशुबल समाजके हितके लिये है। यह बात ऐतिहासिक होनेके साथ ही साथ उचित भी है, परन्तु हत्या करना बुरा काम है यह बात मुझे अच्छी तरह मालूम है चाहे मेरी तर्कशक्ति कुछ भी न हो। मुझसे जो सेनामें भर्ती होने और सैनिकोंके खर्चके लिये टेक्स देनेको कहा जाता है उसका यह अर्थ है कि मैं हत्यामें भाग लेनेवाला बनाया जाता हूं, जिसे मैं कभी नहीं करना चाहता। भूखे आदमियोंसे धमकी देकर तुमने जो रुपया एकत्र किया है उसे भी मैं नहीं चाहता। मैं उस जमीन और धनको भी नहीं पसन्द करता जिसकी तुम्हारे द्वारा रक्षा होती है; क्योंकि मैं जानता हूं कि उसकी रक्षा हत्याके आधारपर ही है।

सरकारों और उनके पशुबलके समर्थनमें जितनी दलील पेश की जाती हैं उन सबका जवाब इस प्रकार होना चाहियेः—

कि मैं इन सब बातोंको कर सकता था जबतक मैंने उनके पापपूर्ण स्वरूपको न समझा था। जब मैं समझ चुका हूं तब उनमें भाग नहीं ले सकता।

मैं जानता हूं कि हम सब पशुबलसे इतने बंधे हुए हैं कि उससे छुटकारा नहीं पा सकते, परन्तु जहांतक मुझसे होगा मैं उसमें भाग न लूंगा। मैं पापमें भाग लेनेवाला न बनूंगा। पशुबलसे प्राप्त होनेवाली और रक्षा की जानेवाली चीजोंका प्रयोग न करूंगा।

मैं अपने थोड़ेसे जीवनमें अपने अन्तःकरणके विरुद्ध क्यों आचरण करूं। मैं पापपूर्ण कामोंमें कभी सहायक न बनूंगा।

मेरे इस आचरणका क्या फल होगा यह मैं नहीं जानता। मैं केवल यह विचार करता हूं कि अन्तःकरणके अनुसार काम करनेसे कोई हानि नहीं हो सकती।

आम तौरसे तर्क करनेपर जो परिणाम निकलेगा, उसका समर्थन प्रत्येक व्यक्तिका अन्तःकरण भी करेगा जो सर्वोत्तम और दोषशून्य न्यायकर्ता है।

उपसंहार।

जो कुछ मैंने लिखा है, उसे पढ़कर लोग कहेंगे कि यह तो वही पुरानी बात हुई। एक ओर तो वर्तमान जीवन क्रमको नष्ट करनेकी सलाह कोई नया क्रम सामने न रखकर दी जा रही है और दूसरी ओर निष्क्रियताका आदेश है। मैं जानता हूं कि बहुतसे सच्चे और गम्भीर मनुष्य यह भी सोचेंगे और कहेंगे कि सरकारी काम बुरा है, जमींदारका काम बुरा है, व्यापारीका काम बुरा है, साम्यवादी और क्रान्तिवादीका काम बुरा है यानी जो भी वास्तविक काम हो रहा है वह सब तो बुरा है; परन्तु वह सब अनिश्चित बात अच्छी है जो नैतिक और धार्मिक बतायी जाती है और जिसके कारण पूरी गड़बड़ और अकर्मण्यता उत्पन्न होती है।

मारकाट या पशुबलका अभाव लोगोंको इसलिये बुरा लगता है कि वे समझते हैं कि उसके बिना जानमालकी रक्षा न हो

सकेगी। जो आदमी जिस चीजको चाहेगा, दूसरेसे छीन लेगा और उसे दण्ड न मिलेगा। पशुबलके विना सदा अशान्ति बनी रहेगी और सदा एक दूसरेके विरुद्ध लडाई छिड़ी रहेगी।

मैं जो कुछ कह चुका हूं उसे न दुहराकर यही कहूंगा कि पशुबलसे जानमालकी रक्षा होनेके कारण अशान्ति घटती नहीं, बढती ही है। यदि मान लिया जाये कि पशुबलके अभावमें अशान्ति ही पडी होगी, तब भी वे लोग क्या करें जो सब बुराइयों और कष्टोंकी जड इसी पशुबलको मान चुके हैं।

यदि हमें मालूम हो जाये कि शराबखोरीके कारण हम बीमार हैं, तो हमें शराब पीना छोड देना चाहिये न कि दवाओंका प्रयोग-कर शराबखोरी जारी रखनी चाहिये।

सामाजिक बीमारीके सम्बन्धमें भी यही होना आवश्यक है। यदि हम समझ गये हैं कि मारकाटसे सब कष्ट होते हैं, तो हमे मारकाटका समर्थन किसी भी रूपमें न करना चाहिये। जबतक लोगोंके कष्टोंका प्रधान कारण न मालूम हुआ था तबतक दूसरी बात थी। जब पशुबल कष्टोंका प्रधान कारण मान लिया गया, तब न तो पुरानी मारकाट जारी रखनी चाहिये और न नयीको स्थान देना चाहिये। जिस तरह शराबखोर शराब छोडकर ही बीमारीसे मुक्त हो सकता है, उसी तरह सामाजिक बुराइया दूर करनेका एक ही उपाय है—पशुबलकी जड मिटा दी जाये। उसका न तो प्रचार किया जाये और न वह न्यायसङ्गत ही ठहराया जाये।

पशुबलके नाशसे सामाजिक बुराइयां दूर होती हैं और साथ ही हमारे जमानेके आदमियोंकी नैतिक जागृति भी इस ढङ्गसे होती है, इसलिये पशुबलका नाश करना चाहिये। जो चीज लोगोंको गुलामीसे छुड़ानेवाली है, वह व्यक्तियोंकी नैतिक जागृतिके लिये भी आवश्यक है। इसलिये प्रत्येक व्यक्तिको न तो मारकाटमें भाग लेना चाहिये, न उसका समर्थन करना चाहिये और न उससे लाभ ही उठाना चाहिये। इससे उसका जीवन-सम्बन्धी नियम पूरा होता है और साथ ही सबका हित भी होता है।



तीसरा अध्याय।

सरकार।

(१)

सुधारकोंसे अपील।

राजनीतिक और धार्मिक विज्ञान अलग अलग कर दिया गया—यह संसारमें सबसे बडी भयानक भूल हुई।

श्रमजीवियोंसे अपील करते हुए मैंने कहा है कि यदि श्रमजीवी अत्याचारपीडित नहीं रहना चाहते, तो उन्हें उस तरह रहना त्याग देना चाहिये जिस तरह कि वे आजकल रह रहे हैं। व्यक्तिगत लाभके लिये उन्हें अपने पडोसियोंसे न लडना होगा। इस धर्मवाक्यको मानना होगा कि दूसरोंके साथ उसी तरहका बर्ताव किया जाये जैसा बर्ताव कि हम दूसरोंसे चाहते हैं।

मैंने जो ढङ्ग बताया उसके कारण दो विरोधी मतवाले भी एक ही तरहसे दोषारोपण करने लग गये हैं जैसी कि मुझे आशा थी।

यह सब हवाई किले हैं। उस समयतक कैसे राह देखी जा सकती है, जबतक कि लोग अत्याचार और पशुत्वसे मुक्त होनेके लिये धर्मपरायण न बन जायें। इसका तो यह अर्थ होगा कि बुराईका अनुभव हो जानेपर भी चुप बैठना पडेगा।

मैं बताना चाहता हूं कि मेरा विचार क्रियात्मक है जैसा कि वह बहुतोंको मालूम ही नहीं होता। सामाजिक सुधारके लिये जिन तत्वदर्शियोंने अबतक जो उपाय बताये हैं उनसे यह अधिक ध्यान देने योग्य है। मैं यह बात उन लोगोंसे कहना चाहता हूं जो सच्चे दिलसे समाजसेवा करना चाहते हैं—जबानी जमाखर्च करनेकी अपेक्षा कुछ काम करना चाहते हैं। इन्हीं लोगोंसे मैं अब कुछ कहता हूं।

(१)

सामाजिक जीवनके आदर्श बदला करते हैं जिनके लिये व्यक्तियोंकी शक्ति व्यय हुआ करती है। उन आदर्शोंके परिवर्तनके साथ मानुषिक जीवनका क्रम भी बदला करता है। एक समय था जब कि सामाजिक जीवनका आदर्श पशुवत् स्वतन्त्रता थी। उसके कारण एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिको हड़प जाया करता था यदि वह ऐसा करनेमें समर्थ होता था। इसके बाद वह समय आया जिसमें कि सामाजिक आदर्श एक व्यक्तिकी शक्तिके रूपमें दिखाई दिया। लोगोंने उसकी ईश्वरके समान पूजा की और स्वेच्छापूर्वक बड़े उत्साहके साथ उसके अधीन हुए। इसके बाद लोगोंने ऐसा क्रम आदर्श माना जिसमें शक्ति इसलिये स्वीकार की गयी जिससे लोगोंकी जानें ठीक बनी रहें। कभी राजशासन स्वीकार किया गया, कभी पुरोहितोंका शासन माना गया। इसके बाद प्रतिनिधि-शासन माना गया और इसके बाद प्रजातन्त्रकी धूम मची। इस समय सबका यह उद्देश्य है कि

आर्थिक सङ्गठन इस ढङ्गका हो कि कोई किसी चीजपर अपना विशेष अधिकार न रखता हो और सब चीजें राष्ट्रीय सम्पत्ति मानी जायें।

आदर्श भले ही भिन्न हों, परन्तु उनको कार्यमें परिणत करनेके लिये सदा ही पशुबलकी आवश्यकता हुई, जिसने लोगोंसे उनकी इच्छाके विरुद्ध कानूनका पालन कराया। अब भी वही पशुबल स्वीकार किया जा रहा है।

यह विश्वास किया जाता है कि सबके लिये अधिकसे अधिक कल्याण कुछ लोगोंद्वारा प्राप्त किया जा सकता है जिनके हाथमें शक्ति सौंपी गयी हो। वे नागरिकोंकी रक्षा कर सकेंगे और एक दूसरेके अधिकार या सम्पत्तिपर आक्रमण न कर सकेगा। किसीकी जान और आजादी भी न नष्ट होगी। मानुषिक जीवनके लिये जो वर्तमान सरकारी ढङ्ग आवश्यक समझते हैं उन्हींका यह विश्वास नहीं, बल्कि उन साम्यवादियों और क्रांतिवादियोंका भी है जो वर्तमान शासन-सङ्गठनके विरोधी हैं। वे भी पशुबलको आवश्यक मानते हैं। वे सामाजिक जीवनके लिये यह जरूरी समझते हैं कि कुछ लोगोंको अधिकार है कि वे दूसरोंको कानून माननेके लिये बाध्य कर सकें।

प्राचीन कालसे यह बात चली आती है और अब भी जारी है। जो लोग पशुबलके कारण कानून माननेके लिये बाध्य हुए, उन्होंने कानूनोंको कभी सर्वोत्तम नहीं माना। उन्होंने शक्ति भोगनेवालोंके विरुद्ध विद्रोह किया और उन्हें पदच्युतकर

नये आदमियोंके हाथमें अधिकार दिया। उनकी रायमें नवीन क्रम विशेष रक्षा करनेवाला था, परन्तु शक्ति पानेवाले अधिकारके मदमें पतित हो गये। उन्होंने अपनी शक्ति सार्वजनिक हितमें न लगाकर अपना मतलब हल करनेमें लगायी। इस तरह नया ढङ्ग पुरानेके समान ही निकला और बहुधा वह पहलेसे भी अधिक अन्यायपूर्ण निकला। यह तो उस समय हुआ जब कि विद्रोह करनेवाले सफलता प्राप्त कर गये। यदि उन्हें विफलता हुई, तो शासनकर्ताओंने अपनी विजयके मदमें चूर होकर अपनी रक्षाका विशेष प्रबन्ध किया और नागरिकोंकी स्वतन्त्रतापर विशेष आघात हुआ।

पुराने जमानेमें ऐसा ही हुआ और वर्तमान कालमें भी यही बात देखी गयी। १६ वीं शताब्दीका युरोपीय इतिहास इस सम्बन्धमें विशेष शिक्षाप्रद है। शताब्दीके पूर्व भागमें विद्रोह करनेवालोंको सफलता हुई, परन्तु पहले और तीसरे नेपोलियन तथा दसवें चार्ल्सने शक्ति पाकर नागरिकोंकी शक्ति नहीं बढ़ायी। शताब्दीके द्वितीय भागमें यानी १८४८ के बाद जितनी राजक्रान्तियां हुईं, सब सरकारोंद्वारा दबा दी गयीं। सरकारोंने अपनी रक्षाकी विशेष व्यवस्था की। वैज्ञानिक साधनोंने उनकी शक्ति और भी अधिक बढ़ा दी। शताब्दीके अन्तमें उन्होंने अपनी शक्ति इतनी बढ़ा ली कि लोगोंको उनके विरुद्ध शिर उठाना असम्भव हो गया। सरकारोंने जनतासे बहुतसा धन बटोरा और सेनाओंको पूर्णरूपसे सुसज्जित किया। उन्होंने इतना ही

नहीं किया, बल्कि आध्यात्मिक साधनोंद्वारा जनताके हृदयपर भी प्रभाव डाला। उन्होंने समाचारपत्रों और शिक्षापर भी अपना प्रभाव कायम कर लिया। ये सब उपाय इतने जबर्दस्त सिद्ध हुए हैं कि १८४८ के बाद युरोपमें लोगोंको जल्दी शिर उठानेका साहस नहीं हुआ।

(२)

हमारे इस जमानेकी अवस्था पुराने जमानेसे भिन्न है। नीरो, चंगेजखां और चार्ल्स यद्यपि बली शासक थे, परन्तु वे अपने सीमान्तके विद्रोहको कभी शान्त न कर सके। अपनी प्रजाके आध्यात्मिक, शिक्षासम्बन्धी और नैतिक तथा धार्मिक विचारोंका वे कभी नियन्त्रण नहीं कर सके, परन्तु आजकलकी सरकारें इनका अच्छी तरह नियन्त्रण कर रही हैं।

अब सरकारोंने अपना सङ्गठन इस ढङ्गसे किया है कि उनके विरुद्ध विद्रोह करना सम्भव नहीं। उनके हाथमें खुफिया पुलिस, जासूस विभाग, रेल, तार, टेलीफोन, जेलखाने, किले, अपार धन और सेना है। वे समाचार-पत्रोंको रिश्वत देकर लोकमतपर भी अपना अधिकार रखती हैं। सङ्गठन इस ढङ्गसे किया गया है कि अयोग्यसे अयोग्य शासक बड़ीसे बड़ी क्रान्ति दबा सकता है। क्रान्तिवादी विद्रोहकी जो चेष्टा करते हैं उसके कारण सरकारोंकी शक्ति और भी बढ़ जाती है। सरकारोंसे मुक्ति पानेका अब यही उपाय है कि जनताद्वारा बनी हुई सेनाएं सरकारोंकी निर्दयता और अन्यायको देखकर उनका साथ देना

छोड़ दें। सरकारें अपनी शक्तिका साधन सेनाओंको समझकर उनका सङ्गठन इस ढङ्गसे किये हुए हैं कि जनताका आन्दोलन उन्हें सरकारोंके अधिकारसे बाहर नहीं कर सकता। जो सेनामें है उसके कुछ भी व्यक्तिगत विचार हों, प्रबन्धके नाम-पर प्रत्येक आज्ञा माननेके लिये बाध्य है। जिस तरह कि आंख-के सामने घूंसा दिखानेसे पलकें जरूर गिरा करती हैं। नव-युवकोंके हृदयोंमें देशभक्तिका बीज बोकर उन्हें सेनामें भर्ती किया जाता है और भ्रमजनक शिक्षा पानेके कारण वे कोई आज्ञा नहीं टाल सकते। वे सेनामें भर्ती होनेसे इनकार नहीं कर सकते और भर्ती होनेके बाद एक ही सालमें सरकारके कठपुतले बन जाते हैं। सरकारी प्रबन्धके जादूकी यही महिमा है जो शता-ब्दियोंकी चालाकीसे उपस्थित किया गया है। हजारोंमें एक दो व्यक्ति अपने धार्मिक सिद्धान्तों या अन्तःकरणके आदेशके कारण सैनिक सेवा स्वीकार नहीं करते। सरकारें उनके सिद्धान्तोंको नहीं मानतीं। इस तरह युरोपमें सरकारोंके विरुद्ध विद्रोह होना कठिन है।

यदि विद्रोह खड़ा कर दिया जाये तो वह शीघ्र दबा दिया जायेगा। कुछ दुस्साहसी मारे भी जायेंगे और अन्तमें सर-कारोंकी शक्ति बढ़ जायेगी। साम्यवादी और क्रान्तिवादी पेशे-दार आन्दोलक बन गये हैं इसलिये वे अपनी कार्यप्रणालीकी त्रुटिका भले ही अनुभव न करें, परन्तु कोई भी समझदार आदमी इतिहासकी घटनाओंसे लाभ उठाये बिना नहीं रह सकता।

(२)

बहुत पुराने जमानेसे सरकारों और जनताके बीच मुठभेड़ होती चली आ रही है जिसका यही फल हुआ है कि पुरानीकी जगह नयी सरकार कायम होती गयी। युरोपमें १९ वीं शताब्दी-के मध्यसे ऐसी अवस्था वैज्ञानिक उन्नतिने उत्पन्न कर दी है कि सरकारोंके विरुद्ध मुठभेड़ हो ही नहीं सकती। सरकारोंकी शक्ति ज्यों ज्यों बढ़ी है त्यों त्यों यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो गयी है कि पशुबलपर स्थापित शक्तिसे कभी लाभ नहीं पहुंच सकता। शक्ति सर्वोत्तम आदमियोंके हाथ न लगकर सबसे खराब आदमियोंको मिली। अच्छे आदमियोंने उसे न पाया, क्योंकि वह तो पशुबलपर निर्भर करती है। यदि अच्छे आदमी पा भी गये, तो उसे कायम न रख सके।

शक्ति हानिकारक होनेपर भी उससे उल्टा लाभ चाहना वास्तवमें अग्निको शीतल समझनेके समान है। लोग वर्षोंतक सरकारोंसे लाभ उठानेके फेरमें पड़े रहे, क्योंकि सरकारें बाहरी धूमसे अपने असली रूपको छिपाये रहती हैं। उनसे स्वाभाविक तौरसे भय लगता है और उनका भय बढ़ानेमें कुछ प्राचीन प्रणाली भी मदद देती है। लोग हालहीमें समझ सके हैं कि सरकारें अपना भयानक रूप छिपाये रहती हैं, परन्तु वे वास्तव में पशुबलपर ही अवलम्बित हैं और इस बलके द्वारा लोगोंको जानमालसे वञ्चित करनेकी धमकी दिया करती हैं। जिन लोगोंके पास शक्ति होती है वे कोई भी क्यों न हों, सदा इस

बातके लिये चिन्तित रहते हैं कि हमारी श्रेयस्कर स्थिति बनी रहे। वे इसीलिये अच्छे नहीं, सबसे खराब आदमी होते हैं और समाजका कल्याण करनेकी अपेक्षा सामाजिक दुर्दशाके सबसे प्रधान कारण होते हैं। पहले जो शक्ति रखते थे वे भक्ति-पात्र बना करते थे, अब घृणापात्र बनते हैं। लोग समझ गये हैं कि सरकारोंकी बाहरी तड़क भड़क फांसी लगानेवालेकी बढ़िया चमकीली पोशाकके समान है। वह अन्य कैदियोंकी अपेक्षा बढ़िया कपड़े पहनता है, क्योंकि उसे सबसे भीषण काम करना पड़ता है जो प्राणीको फांसीपर लटकाना है।

शासक यह बात समझ गये हैं कि लोग हमें घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं इसलिये अब वे अपनी शक्ति यह कहकर कायम नहीं रखना चाहते कि शासकोंमें कभी कोई दुर्गुणकी कल्पना ही न करनी चाहिये। वे पशुवलसे दूसरोंको भयभीतकर अपनी शक्तिकी रक्षा करते हैं। पशुवलपर ही अवलम्बन करनेवाले शासक दिनपर दिन जनताका विश्वास खोते जा रहे हैं। [illegible] खोकर वे राष्ट्रीय जीवनका और भी अधिक नियन्त्रण [illegible] जरूरी समझते हैं। यह नियन्त्रण और भी अधिक अ[illegible] उत्पन्न करता है।

[illegible] करनेवाले अधिकाधिक पशुबलका सहारा लेते जा[illegible] और जनता उनके प्रति दिनपर दिन भक्ति कम करती जा[illegible] है। वह उनकी अधीनी केवल इसीलिये स्वीकार करती है [illegible] और कोई उपाय नहीं।

१६ वीं शताब्दीके मध्यसे सरकारोंकी शक्ति अजेय हुई है और उसी समयसे उसने जनताकी भक्ति भी खोयी है। जनतामें यह धारणा उत्पन्न हो गयी है कि दण्डके भयसे किसी दूसरेकी इच्छाके अनुसार काम करनेका नाम कभी स्वतन्त्रता नहीं है जिसकी दुहाई शक्तिसम्पन्न सरकारें दिया करती हैं। सच्ची स्वतन्त्रता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने निर्णयके अनुसार काम कर सके। वह चाहे तो कर चुकाये और चाहे तो न चुकाये। वह चाहे तो सेनामें भर्ती हो और चाहे तो न भी भर्ती हो। वे पड़ोसी देशोंसे मित्रता चाहें तो मित्रता कर सकें और उनके शत्रु होना चाहें तो शत्रु बन सकें। कुछ आदमी दूसरे आदमियोंपर शासन करें, यह सच्ची स्वतन्त्रताके विपरीत बात है।

अब पहलेकी तरह शासन करनेवाले व्यक्ति ईश्वरीय नहीं माने जाते। कोई आदमी यह भी नहीं मानता कि शासन करनेवालोंकी समाज-हितके लिये आवश्यकता है। सब जानते हैं कि पशुबलकी सहायतासे कुछ थोड़ेसे आदमियोंने अधिक आदमियोंपर शासन स्थापित कर रखा है। शक्ति चाहे किसी निरंकुश सम्राट्के हाथमें हो, किसी कमेटीके अधिकारमें हो या राष्ट्रपतिके हाथमें हो और चाहे जिस स्थानमें हो, वह कुछ थोड़ेसे आदमियोंके हाथमें अधिक आदमियोंको दबानेके लिये ही रहेगी। इस शक्तिके [illegible] स्वतन्त्रता नहीं दिखाई दे सकती। [illegible] दिखाई देगा। इसलिये शक्तिका

इस शक्तिका नाश कैसे हो और उसके नष्ट होनेपर समाजकी क्या नयी व्यवस्था हो जिससे लोग असभ्य-कालकी तरह एक दूसरेको हड़प जानेके लिये तैयार न हों। सभी क्रान्तिवादी पहले प्रश्नका एक ही उत्तर देते हैं। वे शक्तिका नाश पशुबलसे नहीं चाहते। वे कहते हैं कि लोग जब उसकी खराबी और अनावश्यकता समझ जायेंगे, तब उसे नष्ट कर देंगे। दूसरे प्रश्नका उत्तर भिन्न भिन्न रूपसे दिया जाता है।

१८ वीं शताब्दीके अन्त और १६ वीं शताब्दीके आरम्भमें गाडविन नामक अंग्रेजने और प्राउधन नामक फ्रांसीसीने लिखा है कि शक्तिके नाशके लिये जनताकी जागृति काफी है। यदि लोगोंको बता दिया जाये कि सार्वजनिक हित और न्यायपर शक्ति भोगनेवाले ही आघात करते हैं, तो शक्ति कायम न रह सकेगी। शक्तियोंके न रहनेपर नया सामाजिक सङ्गठन उस जागृतिके आधारपर हो जायेगा, जो सार्वजनिक हित और न्यायकी रक्षाके लिये उत्पन्न हुई है। लोग उनकी रक्षाके लिये अपने आप ही बढ़िया जीवनक्रम बना लेंगे।

क्रोपोटकिन आदि अन्य क्रान्तिवादियोंकी राय है कि जब जनता समझ जायेगी कि शक्ति भोगनेवाले उन्नतिमें बाधक हैं तो वह न ठहर सकेगी। शक्तिके नाशके वास्ते वे क्रान्तिके लिये लोगोंको तैयार करनेका अनुरोध करते हैं। सामाजिक सङ्गठनके सम्बन्धमें उनकी राय है कि लोग अपने आप ही ऐसा क्रम निर्धारित कर लेंगे जो परस्परमें लाभदायक

जर्मन क्रान्तिवादी मेक्स स्टर्नर और अमेरिकानिवासी टकर भी यही उत्तर देते हैं। दोनोंका विश्वास है कि यदि लोग समझने लग जायेंगे कि प्रत्येक व्यक्ति उसी तरह काम करनेके लिये बाध्य है जिससे उसका हित हो और उस हितमें शासन करनेवाले बाधक हैं, तो शक्तिका नाश हो जायेगा। लोग या तो शासन करनेवालोंकी आज्ञा न मानेंगे या शासनमें योगदान न करेंगे। शक्तिका नाश हो जानेपर आत्मकल्याण चाहनेवाले लोग इस ढङ्गसे सङ्गठित हो जायेंगे कि वे हरएकके लिये उचित और लाभदायक व्यवस्था तैयार कर लेंगे।

सब लोगोंका यह मत बिल्कुल ठीक है कि सरकारोंका नाश पशुबलसे नहीं हो सकता। पशुबल यदि एक शक्तिको नष्ट कर देगा तो दूसरी शक्ति सामने आ जायेगी। लोग जिस समय शक्तिकी आवश्यकता न समझेंगे और उसे हानिकारक मानने लगेंगे, तो उनकी इस जागृतिसे शक्तिका अवश्य नाश हो जायेगा। लोग उसकी आज्ञा न मानेंगे और न उसमें योगदान करेंगे। यह बिल्कुल ठीक बात है कि जनताका आत्मज्ञान ही शक्तिका नाश कर सकता है। जनताकी जागृति किस बातमें समझी जानी चाहिये ? क्रान्तिवादी कहते हैं कि सार्वजनिक हित, न्याय, उन्नति या व्यक्तिगत कल्याणकी ओर ध्यान देना ही जागृतिका चिन्ह है। सार्वजनिक हित, न्याय और उन्नति सबकी रायमें भिन्न भिन्न मालूम होंगे। लोग इनके सम्बन्धमें सहमत नहीं हो

सकते। आपसमें एक दूसरेका वि
हुई शक्ति किस तरह नष्ट कर सकते
जो लोग सार्वजनिक हितके लि
सकेंगे, वे क्या ऐसी व्यवस्था कर स
न्यायपूर्ण सङ्गठनमें बने रहें ? यह प
कि सब व्यक्तिगत लाभोंको ध्यानमें
सम्बन्ध स्थापित कर लेंगे।

क्रान्तिवादी यद्यपि सरकारें नष्ट
बताते हैं, परन्तु उनका जीवन-अ
शक्ति भोगनेवाले इस कमजोरीको स
उठाया करते हैं। वे जानते हैं कि क्र
त्मिक साधनको काममें नहीं ले स
नाश किया है। आध्यात्मिक साध
इस मानुषिक जीवनको सब-कुछ न
जीवनका भाग समझे और अपने
जीवनसे सम्बद्ध करे। अपना हित
रखनेवाले कानूनोंको पूरा करनेमें लग
कानूनोंकी उनके सामने परवा भी न र
सब मनुष्योंको एकताके एक दृढ़ सू
मानुषिक शक्तिके वशमें रहनेकी आव
जिससे वह नष्ट कर दी जायेगी। जीव
पशुबलके बिना न्यायपूर्ण सङ्गठन तैयार

लोग समझ गये कि सरकारोंकी ताकतपर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती। पशुबल उस ताकतके सामने ठहर नहीं सकता। सरकारोंकी ताकत और उससे पैदा होनेवाली बुराइयां केवल इसी लिये सम्भव हैं कि मनुष्यका जीवन आदर्श बुरा है। ताकत और उसकी बुराइयां दूर करनेके लिये मनुष्यको अच्छा जीवन व्यतीत करना होगा। अब लोगोंको समझना होगा कि अच्छा जीवन व्यतीत करनेके लिये ऐसे धार्मिक सिद्धान्तका प्रचार करना होगा और उसे कार्यमें परिणत करना होगा जो अधिकांश मनुष्योंके लिये स्वाभाविक हो और उनकी समझमें आ जाता हो। इस धार्मिक सिद्धान्तके बिना और किसी चेष्टासे सरकारें नष्ट न होंगी और उनके नष्ट न होनेपर जीवनका उत्तम सङ्गठन न होगा। लोग जिस उद्देश्यकी ओर बढ़ रहे हैं वह इस सिद्धान्तके बिना प्राप्त होना तो दूर रहा, वह मनुष्योंसे और भी दूर होता जायेगा।

(५)

भले आदमियो! यदि तुम इस अभिमानपूर्ण स्वार्थी जीवनसे असन्तुष्ट होकर अपनी शक्तियां दूसरोंकी सेवामें लगाना चाहते हो, तो मैं तुमसे ऊपरकी बात कहता हूं। यदि आप लोग सरकारी कामोंमें भाग लेकर जनताकी सेवा करना चाहते हैं, तो भूल करते हैं। ऐसी कोई सरकार नहीं जो पशुबलपर स्थापित न हो, मारकाट और लूट न करती हो।

अमेरिकाके एक प्रसिद्ध लेखक थारोने एक निबन्ध लिखा

है कि लोगोंको सरकारकी आज्ञा न माननी चाहिये। उन्होंने बताया है कि मैंने अमेरिकन सरकारको एक भी डालर करके रूप नहीं दिया। मैंने लिखा कि जो सरकार हवशियोंको गुलाम बनाना ठीक समझती है उसमें मैं कर देकर भाग लेनेवाला नहीं बनना चाहता। क्या उन्नतिशीलसे उन्नतिशील सरकारोंके नागरिक भी यही बात नहीं कह सकते जब कि वे देखते हैं कि उनकी सरकारें अमेरिकन सरकारकी तरह दूसरोंको गुलाम बनाये हुए हैं?

कोई भी सच्चा आदमी जो अपने भाइयोंकी सेवा करना चाहता है, सरकारका स्वरूप पहचानकर उसमें भाग नहीं ले सकता। वह इस सिद्धान्तपर भले ही भाग ले सकता है कि उद्देश्य अच्छा होनेपर कोई भी साधन काममें लाया जा सकता है। अनुभवसे यह बात मालूम हुई है कि ऊपरके सिद्धान्तपर काम करनेसे और सरकारी कामोंमें भाग लेनेसे उन लोगोंको हानि पहुंची है जिनकी सेवा करना उद्देश्य माना गया है। काम करनेवालोंको भी हानि पहुंची है।

बात बड़ी सीधी है। आप सरकारके कानून मानकर, उसकी अधीनी स्वीकारकर जनताके लाभके लिये उससे अधिक स्वतन्त्रता और अधिकार छीनना चाहते हैं। जनताकी स्वाधीनता और अधिकार अधिक होनेसे सरकारें कम लाभ उठा सकेंगी और कमजोर बन जायेंगी। सरकारें यह बात भलीभांति जानती हैं। वे शक्ति अपने पास रखकर लोगोंको उदार

सिद्धान्तोंकी धूम मचाने देती हैं और कभी कभी कुछ सुधार भी कर दिया करती हैं जिससे उनकी शक्तिका परिचय दिया जा सके। इसके बाद वे उदार सिद्धान्तोंके दमनके लिये तैयार होती हैं जिन सिद्धान्तोंसे उनके लाभ छिन सकते हैं और उनका अस्तित्व भी नष्ट हो सकता है। इसलिये जो लोग सरकारी संस्थाओं और पार्लमेण्टोंद्वारा जनताकी सेवा करना चाहते हैं, वे सरकारोंको शक्ति बढानेका मौका देते हैं और इस तरह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे सरकारोंमें भाग लेनेवाले बनते हैं।

क्रान्तिवादी और साम्यवादियोंका जीवन-आदर्श अपूर्ण है जिससे मनुष्य कभी सन्तुष्ट नहीं हो सका। साथ ही उस उद्देश्य-प्राप्तिके साधन झूठ, धोखाबाजी, हत्या और पशुबल हैं। ये साधन कभी सफल नहीं हो सकते। सरकारोंकी बढी हुई ताकतका वे मुकाबिला नहीं कर सकते। प्रत्येक विद्रोहात्मक चेष्टा सरकारोंकी ताकत बढानेमें सहायक होती है। यदि असम्भव बात सम्भव मान ली जाये और विद्रोहसे सरकारकी हार मान भी ली जाये, तो पशुबलप्रधान एक ताकत दूर होनेपर दूसरी वैसी ही शक्ति प्राधान्य प्राप्त कर लेगी और जनताको कोई अधिकार प्राप्त न होगा। यदि यह भी मान लिया जाये कि वह जनताको सभी अधिकार दे देगी, तो भी लोग स्वार्थी जीवन व्यतीत करते हुए पहलेसे अच्छा जीवन-क्रम न बना सकेंगे।

लोग आपसमें एक दूसरेपर अत्याचार न करते हुए एक

है कि लोगोंको सरकारकी आज्ञा न माननी चाहिये। उन्होंने बताया है कि मैंने अमेरिकन सरकारको एक भी डालर करके रूप-
नहीं दिया। मैंने लिखा कि जो सरकार हवशियोंको गुलाम बनाना ठीक समझती है उसमें मैं कर देकर भाग लेनेवाला नहीं बनना चाहता। क्या उन्नतिशीलसे उन्नतिशील सरकारोंके नाग-रिक भी यही बात नहीं कह सकते जब कि वे देखते हैं कि उनकी सरकारें अमेरिकन सरकारकी तरह दूसरोंको गुलाम बनाये हुए हैं?

कोई भी सच्चा आदमी जो अपने भाइयोंकी सेवा करना चाहता है, सरकारका स्वरूप पहचानकर उसमें भाग नहीं ले सकता। वह इस सिद्धान्तपर भले ही भाग ले सकता है कि उद्देश्य अच्छा होनेपर कोई भी साधन काममें लाया जा सकता है। अनुभवसे यह बात मालूम हुई है कि ऊपरके सिद्धान्तपर काम करनेसे और सरकारी कामोंमें भाग लेनेसे उन लोगोंको हानि पहुंची है जिनकी सेवा करना उद्देश्य माना गया है। काम करनेवालोंको भी हानि पहुंची है।

बात बड़ी सीधी है। आप सरकारके कानून मानकर, उसकी अधीनी स्वीकारकर जनताके लाभके लिये उससे अधिक स्वतन्त्रता और अधिकार छीनना चाहते हैं। जनताकी स्वाधी-नता और अधिकार अधिक होनेसे सरकारें कम लाभ उठा सकेंगी और कमजोर बन जायेंगी। सरकारें यह बात भली-भांति जानती हैं। वे शक्ति अपने पास रखकर लोगोंको उदार

पड़ती है जिस सुधारके लिये बड़ा परिश्रम और युद्ध करना पड़ता है। बाहरी जीवनक्रम बदलनेकी चेष्टामें अपना चरित्र सुधारनेकी जरूरत नहीं पड़ती और अपनी आत्मासे युद्ध किये बिना ही योद्धा बननेका मौका मिल जाता है।

जो लोग सच्चे दिलसे अपने पड़ोसियोंकी सेवा करना चाहते हैं उन्हें मुझे इस भूलके सम्बन्धमें सावधान करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है।

(६)

हम अपनी चारों ओर भूखे और दुःखी आदमी देख रहे हैं, फिर हम किस तरह धार्मिक सिद्धान्तको मानते हुए चुपचाप उसके अनुसार काम करते हुए रह सकते हैं। हम तो लोगोंकी तुरन्त सेवा करना चाहते हैं और इसके लिये हर तरहसे कोशिश करना चाहते हैं और अपनी जानतक दे देना चाहते हैं। बहुतसे आदमी यह बात उत्तेजित होकर कहेंगे।

मैं उन्हें जवाब दूंगा कि आप लोग यह बात कैसे जानते हैं कि हमें अपने भाइयोंकी सेवा उसी ढङ्गसे करनी है जो हमें अच्छा और क्रियात्मक मालूम हो। आप जो कुछ कह रहे हैं उससे स्पष्ट है कि आप निश्चय कर चुके हैं कि, हम धार्मिक जीवन व्यतीत कर मनुष्योंकी सेवा नहीं कर सकते। असली सेवा तो राजनीतिक आन्दोलनसे ही की जा सकती है जो प्रसिद्धि प्रदान करनेवाला है।

सब राजनीतिक नेता इसी प्रकार विचार किया करते हैं

साथ जीवन व्यतीत कर सकें, इसके लिये उन्हें ऐसे सङ्गठनके भीतर रहनेकी जरूरत नहीं जो पशुबलप्रधान हो। ऐसे सङ्गठनकी आवश्यकता है जो नैतिक बलप्रधान हो यानी जिसमें लोग बाहरी दबावके कारण नहीं, बल्कि स्वेच्छासे दूसरोंके प्रति वैसा वर्ताव करनेको तैयार हों, जिस वर्तावकी वे स्वयं अपने लिये दूसरोंसे इच्छा रखते हों। अपने पड़ोसियोंकी सेवाकी इच्छा रखनेवालोंके लिये जरूरी है कि वे जीवनका नया क्रम तैयार करनेकी ओर ध्यान न दें, बल्कि अपना और दूसरे आदमियोंका चरित्र सुधारें।

बहुतसे लोग समझते हैं कि बाहरी जीवन-क्रम बदल जानेसे लोगोंमें सुचरित्रता उत्पन्न हो जायेगी, परन्तु ऐसा समझना मानो कार्यको कारण बनाना है। जीवनक्रम मनुष्यके चरित्रपर नहीं, मनुष्यका चरित्र जीवनक्रमपर प्रभाव डाल सकता है। चरित्र-सुधारकी ओर ध्यान न देकर नये जीवनक्रमकी ओर ध्यान देनेसे यह भी सम्भावना रहती है कि मनुष्यकी चेष्टा ठीक मार्गपर न चले। जीवनक्रम बदलकर चरित्र-सुधारकी आशा रखना चूल्हेकी गीली लकड़ियोंको इधरसे उधर उलट-पलटकर रखने और इस उलट-पलटसे आग जलानेकी चेष्टा करनेके समान है। आग तो सूखी लकड़ीसे ही पैदा होगी, वे चाहे किसी ढङ्गसे ही क्यों न रख दी गयी हों।

इतनी बड़ी भूल होनेका कारण है। चरित्र-सुधारकी चेष्टा करनेके लिये मनुष्यको पहले अपना चरित्र सुधारनेकी जरूरत

बाहरी सफलताके परित्यागपर जोर देता है। वह मनुष्यको उच्च पद देनेकी अपेक्षा सामाजिक दृष्टिसे बहुत नीचे पदपर कर देता है। धार्मिक कार्य करनेवाला अपमान और घृणाका ही पात्र नहीं बनता, बल्कि भयानक कष्ट और मृत्युका भी सामना करता है।

जिन देशोंमें सैनिक सेवा करनी आवश्यक है, उनमें धार्मिक कार्य करनेवाले सेनामें भर्ती होनेसे इनकारकर सरकारी अत्याचारोंसे पीड़ित होते हैं। धार्मिक कार्य इसलिये बड़ा कठिन है, परन्तु वही सच्ची स्वतन्त्रताका ज्ञान कराता है। वही यह विश्वास दिलाता है कि मनुष्य जो कुछ काम कर रहा है वही उसे करना चाहिये था।

धार्मिक कार्य वास्तवमें फलदायी है। उसके द्वारा सर्वोच्च उद्देश्यकी प्राप्ति सीधे और स्वाभाविक ढङ्गसे हो जाती है, जिस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये सुधारक नकली उपाय काममें लाकर इतना प्रयत्न किया करते हैं।

इस तरह सिद्ध हो जाता है कि जनताकी सच्ची सेवा करनेका एक ही उपाय है। सेवा करनेकी इच्छा रखनेवाले दोषहीन जीवन व्यतीत करें। लोग इस साधनको हवाई पुल समझते हैं, क्योंकि वे उससे लाभ नहीं उठा पाते। लेकिन वह वैसा नहीं, अन्य साधन अवश्य हवाई पुल ही हैं। जनताके नेता इन्हींकी मददसे जनताको जालमें फंसाया करते हैं। उस साधनसे उसे दूर करते रहते हैं, जो वास्तवमें ठीक है।

और सब एक दूसरेका विरोध करते हैं। इसलिये वे निश्चय ही ठीक तौरसे विचार करनेवाले नहीं माने जा सकते। यह बहुत अच्छी बात होती यदि मनुष्य अपने भाइयोंकी सेवा जिस तरह चाहते कर सकते। परन्तु ऐसी बात नहीं हो सकती। मनुष्योंकी सेवा करने और उनका उपकार करनेका एक ही मार्ग है। यह मार्ग उस सिद्धान्तके अनुसार काम करना है जो आत्मोन्नतिपर जोर देता है। सच्ची आत्मोन्नति यही है कि लोगोंके बीच रहकर, उनसे अलग रहकर नहीं, उनके बीच प्रेमसम्बन्ध स्थापित किया जाये। प्रेमसम्बन्ध स्थापित होनेसे मनुष्योंकी अवस्था सुधरे बिना नहीं रह सकती—यह सुधार मनुष्यको यद्यपि विदित नहीं होता।

यह सच है कि सरकारी, पार्लमेण्ट-सम्बन्धी या क्रान्तिकारी कार्यमें भाग लेता हुआ मनुष्य पहलेसे जान सकता है कि किस फलको प्राप्त करना है और साथ ही विलासी जीवन व्यतीत कर सकता, प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता और लोगोंकी हर्षध्वनि प्राप्त कर सकता है। यदि इस प्रकार काम करनेवालेको कुछ कष्ट भी थोड़े समयके लिये उठाना पड़ता है, तो वह यह समझकर सह लिया जाता है कि आगे सफलता होगी। लड़ाईमें लड़नेवालोंको तो जानका भी खतरा रहता है, परन्तु वे सफलताकी आशासे लड़ा करते हैं यद्यपि सेनामें भर्ती होनेवाले सबसे पतित और स्वार्थी मनुष्य हुआ करते हैं।

धार्मिक कार्यके परिणामका पता नहीं चला करता। यह कार्य

बाहरी सफलताके परित्यागपर जोर देता है। वह मनुष्यको उच्च पद देनेकी अपेक्षा सामाजिक दृष्टिसे बहुत नीचे पदपर कर देता है। धार्मिक कार्य करनेवाला अपमान और घृणाका ही पात्र नहीं बनता, बल्कि भयानक कष्ट और मृत्युका भी सामना करता है।

जिन देशोंमें सैनिक सेवा करनी आवश्यक है, उनमें धार्मिक कार्य करनेवाले सेनामें भर्ती होनेसे इनकारकर सरकारी अत्याचारोंसे पीड़ित होते हैं। धार्मिक कार्य इसलिये बड़ा कठिन है, परन्तु वही सच्ची स्वतन्त्रताका ज्ञान कराता है। वही यह विश्वास दिलाता है कि मनुष्य जो कुछ काम कर रहा है वही उसे करना चाहिये था।

धार्मिक कार्य वास्तवमें फलदायी है। उसके द्वारा सर्वोच्च उद्देश्यकी प्राप्ति सीधे और स्वाभाविक ढङ्गसे हो जाती है, जिस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये सुधारक नकली उपाय काममें लाकर इतना प्रयत्न किया करते हैं।

इस तरह सिद्ध हो जाता है कि जनताकी सच्ची सेवा करनेका एक ही उपाय है। सेवा करनेकी इच्छा रखनेवाले दोषहीन जीवन व्यतीत करें। लोग इस साधनको हवाई पुल समझते हैं, क्योंकि वे उससे लाभ नहीं उठा पाते। लेकिन वह वैसा नहीं, अन्य साधन अवश्य हवाई पुल ही हैं। जनताके नेता इन्हींकी मददसे जनताको जालमें फंसाया करते हैं। उस साधनसे उसे दूर करते रहते हैं, जो वास्तवमें ठीक है।

और सब एक दूसरेका विरोध करते हैं। इसलिये वे निश्चय ही ठीक तौरसे विचार करनेवाले नहीं माने जा सकते॥ यह बहुत अच्छी बात होती यदि मनुष्य अपने भाइयोंकी सेवा जिस तरह चाहते कर सकते। परन्तु ऐसी बात नहीं हो सकती। मनुष्योंकी सेवा करने और उनका उपकार करनेका एक ही मार्ग है। यह मार्ग उस सिद्धान्तके अनुसार काम करना है जो आत्मोन्नतिपर ज़ोर देता है। सच्ची आत्मोन्नति यही है कि लोगोंके बीच रहकर, उनसे अलग रहकर नहीं, उनके बीच प्रेमसम्बन्ध स्थापित किया जाये। प्रेमसम्बन्ध स्थापित होनेसे मनुष्योंकी अवस्था सुधरे विना नहीं रह सकती—यह सुधार मनुष्यको यद्यपि विदित नहीं होता।

यह सच है कि सरकारी, पार्लमेण्ट-सम्बन्धी या क्रान्तिकारी कार्यमें भाग लेता हुआ मनुष्य पहलेसे जान सकता है कि किस फलको प्राप्त करना है और साथ ही विलासी जीवन व्यतीत कर सकता, प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता और लोगोंकी हर्षध्वनि प्राप्त कर सकता है। यदि इस प्रकार काम करनेवालेको कुछ कष्ट भी थोड़े समयके लिये उठाना पड़ता है, तो वह यह समझकर सह लिया जाता है कि आगे सफलता होगी। लड़ाईमें लड़नेवालोंको तो जानका भी खतरा रहता है, परन्तु वे सफलताकी आशासे लड़ा करते हैं यद्यपि सेनामें भर्ती होनेवाले सबसे पतित और स्वार्थी मनुष्य हुआ करते हैं।

धार्मिक कार्यके परिणामका पता नहीं चला करता। यह कार्य

बाहरी सफलताके परित्यागपर जोर देता है। वह मनुष्यको उच्च पद देनेकी अपेक्षा सामाजिक दृष्टिसे बहुत नीचे पदपर कर देता है। धार्मिक कार्य करनेवाला अपमान और घृणाका ही पात्र नहीं बनता, बल्कि भयानक कष्ट और मृत्युका भी सामना करता है।

जिन देशोंमें सैनिक सेवा करनी आवश्यक है, उनमें धार्मिक कार्य करनेवाले सेनामें भर्ती होनेसे इनकारकर सरकारी अत्याचारोंसे पीड़ित होते हैं। धार्मिक कार्य इसलिये बड़ा कठिन है, परन्तु वही सच्ची स्वतन्त्रताका ज्ञान कराता है। वही यह विश्वास दिलाता है कि मनुष्य जो कुछ काम कर रहा है वही उसे करना चाहिये था।

धार्मिक कार्य वास्तवमें फलदायी है। उसके द्वारा सर्वोच्च उद्देश्यकी प्राप्ति सीधे और स्वाभाविक ढङ्गसे हो जाती है, जिस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये सुधारक नकली उपाय काममें लाकर इतना प्रयत्न किया करते हैं।

इस तरह सिद्ध हो जाता है कि जनताकी सच्ची सेवा करनेका एक ही उपाय है। सेवा करनेकी इच्छा रखनेवाले दोषहीन जीवन व्यतीत करें। लोग इस साधनको हवाई पुल समझते हैं, क्योंकि वे उससे लाभ नहीं उठा पाते। लेकिन यह वैसा नहीं, अन्य साधन अवश्य हवाई पुल ही हैं। जनताके नेता इन्हींकी मददसे जनताको जालमें फँसाया करते हैं। उस साधनसे उसे दूर करते रहते हैं, जो वास्तवमें ठीक है।

और सब एक दूसरेका विरोध करते हैं। इसलिये वे निश्चय ही ठीक तौरसे विचार करनेवाले नहीं माने जा सकते। यह बहुत अच्छी बात होती यदि मनुष्य अपने भाइयोंकी सेवा जिस तरह चाहते कर सकते। परन्तु ऐसी बात नहीं हो सकती। मनुष्योंकी सेवा करने और उनका उपकार करनेका एक ही मार्ग है। यह मार्ग उस सिद्धान्तके अनुसार काम करना है जो आत्मोन्नतिपर जोर देता है। सच्ची आत्मोन्नति यही है कि लोगोंके बीच रहकर, उनसे अलग रहकर नहीं, उनके बीच प्रेमसम्बन्ध स्थापित किया जाये। प्रेमसम्बन्ध स्थापित होनेसे मनुष्योंकी अवस्था सुधरे बिना नहीं रह सकती—यह सुधार मनुष्यको यद्यपि विदित नहीं होता।

यह सच है कि सरकारी, पार्लमेण्ट-सम्बन्धी या क्रान्तिकारी कार्यमें भाग लेता हुआ मनुष्य पहलेसे जान सकता है कि किस फलको प्राप्त करना है और साथ ही विलासी जीवन व्यतीत कर सकता, प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता और लोगोंकी हर्षध्वनि प्राप्त कर सकता है। यदि इस प्रकार काम करनेवालेको कुछ कष्ट भी थोड़े समयके लिये उठाना पड़ता है, तो वह यह समझकर सह लिया जाता है कि आगे सफलता होगी। लड़ाईमें लड़नेवालोंको तो जानका भी खतरा रहता है, परन्तु वे सफलताकी आशासे लड़ा करते हैं यद्यपि सेनामें भर्ती होनेवाले सबसे पतित और स्वार्थी मनुष्य हुआ करते हैं।

धार्मिक कार्यके परिणामका पता नहीं चला करता। यह कार्य

बाहरी सफलताके परित्यागपर जोर देता है। वह मनुष्यको उच्च पद होनेकी अपेक्षा सामाजिक दृष्टिसे बहुत नीचे पदपर कर देता है। धार्मिक कार्य करनेवाला अपमान और घृणाका ही पात्र नहीं बनता, बल्कि भयानक कष्ट और मृत्युका भी सामना करता है।

जिन देशोंमें सैनिक सेवा करनी आवश्यक है, उनमें धार्मिक कार्य करनेवाले सेनामें भर्ती होनेसे इनकारकर सरकारी अत्याचारोंसे पीड़ित होते हैं। धार्मिक कार्य इसलिये बड़ा कठिन है, परन्तु वही सच्ची स्वतन्त्रताका ज्ञान कराता है। वही यह विश्वास दिलाता है कि मनुष्य जो कुछ काम कर रहा है वही उसे करना चाहिये था।

धार्मिक कार्य वास्तवमें फलदायी है। उसके द्वारा सर्वोच्च उद्देश्यकी प्राप्ति सीधे और स्वाभाविक ढङ्गसे हो जाती है, जिस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये सुधारक नकली उपाय काममें लाकर इतना प्रयत्न किया करते हैं।

इस तरह सिद्ध हो जाता है कि जनताकी सच्ची सेवा करनेका एक ही उपाय है। सेवा करनेकी इच्छा रखनेवाले दोषहीन जीवन व्यतीत करें। लोग इस साधनको हवाई पुल समझते हैं, क्योंकि वे उससे लाभ नहीं उठा पाते। लेकिन यह वैसा नहीं, अन्य साधन अवश्य हवाई पुल ही हैं। जनताके नेता इन्हींकी मददसे जनताको जालमें फंसाया करते हैं। उस मार्गसे उसे दूर करते रहते हैं, जो वास्तवमें ठीक है।

चौथा अध्याय।

युद्ध और शान्ति।

(१)

ट्रान्सवाल युद्धका कारण राजनीतिक नेताओंका आचरण बताया जाता है; परन्तु मैं उसे मान नहीं सकता।

यदि कोई दो आदमी किसी सराय या होटलमें शराब पीकर ताश खेलें और आपसमें लड़ पड़ें, तो मैं उनकी लड़ाईका कारण यह कभी न कहूंगा कि एकने बेईमानी की। मैं तो उस लड़ाईका कारण ढूंढ़ता हुआ यही राय दूंगा कि यदि दोनों शराब पीकर ताश न खेलते, तो लड़ाई ही क्यों होती। दोनों शान्तिपूर्वक आराम कर सकते थे या कोई काम कर सकते थे।

इसी तरह कोई युद्ध होनेपर जब एक पक्षपर दोषारोपण किया जाता है तो मैं उससे सहमत नहीं हो सकता। यह बात भले कही जा सकती है कि एक पक्ष दूसरेकी अपेक्षा विशेष [illegible] रहा है, यह मालूम होनेपर भी यह कोई नहीं कह [illegible] और भीषण युद्ध उस कारण उपस्थित [illegible]

[illegible] हैं वह देख सकता है कि लड़ाइयोंका [illegible] है। लड़ाईके तीन प्रधान कारण हैं।

असमान विभाग, सैनिक श्रेणीकी नियुक्ति, झूठा धार्मिक उपदेश। इसलिये किसी राजा, बादशाह या और किसीके शिर लड़ाईका दोष रखना ठीक नहीं। उनसे नाराज होना भी उचित नहीं। वे तो लड़ाईके कारण नहीं, केवल निमित्तमात्र हैं। यदि नाराजी दिखानी है तो प्रत्येकको अपने ऊपर दिखानी चाहिये जो किसी न किसी रूपमें ऊपर बताये हुए तीनों कारणोंमेंसे एक न एक कारणमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे भाग लेनेवाले हैं।

जबतक हम अपने पास अधिक धन रखकर लाभ उठानेकी इच्छा बनाये रहेंगे, तबतक बराबर लड़ाई कराते रहेंगे, क्योंकि बाजारों और सोनेकी खानोंकी जरूरत बनी रहेगी जो हमारे धनको कायम रख सकें जब कि लाखों करोड़ों आदमी हमारे धनके लिये पसीना बहाकर परिश्रम कर रहे हैं। सैनिक सङ्गठन कायम रहनेसे भी लड़ाई होगी। हम या तो स्वयं सेनामें भर्ती होते हैं या उसे आवश्यक बताकर उसकी प्रशंसा किया करते हैं। जब वह लड़ाई छेड़ देती है तब दूसरोंको गालियां सुनाने लग जाते हैं। लड़ाई बराबर जारी रहेगी जबतक हम उस बिगड़े हुए धार्मिक उपदेशको घृणाकी दृष्टिसे न देखेंगे जो धर्मके नामपर बराबर सुनाया जाता है। धर्मोपदेशक युद्धको ईश्वरीय, सेनाको ईश्वरप्रेमी, तोप बन्दूकोंको धर्मसेवामें लगी बता दिया करते हैं। हम इस प्रकारके बिगड़े हुए धर्मको अपने बच्चोंको सीखने देते हैं, स्वयं उसे मानते हैं और फिर लड़ाईके लिये दूसरोंको कारण मानते हैं।

यही सब कारण हैं कि जिनसे मैं लड़ाईके लिये दूसर
दोष नहीं देता। यदि ऊपर बताये हुए तीनों कारणोंमेंसे प
भी कोई भाग न ले, तो कभी लड़ाई न हो। जो आदमी सत
समर्थक है और लड़ाईसे दुःखी है, उसे तीनों कारणोंको
करनेके लिये आन्दोलन करना चाहिये।

प्रत्येक देशके शासक अपनी जनताको यह कहकर धोख
रहे हैं कि तुम लोगोंपर बाहरवाले आकर आक्रमण कर स
हैं। हम लोग तुम्हारी जानमालकी रक्षा किये हुए हैं। इ
लिये तुम्हें हर साल अपनी कमाईमेंसे कुछ लाख रुपया दे
चाहिये जो तुम्हारी रक्षा करनेवालोंके काम आये। इस
साथ ही तुम्हें भी रक्षा करनेवाली सेनाओंमें भर्ती होना चाहि
सेनाके लिये तुम धन-जन दो और वह हमारे अधिकारमें र
जो सेनामें भर्ती हों, वे हमारी इच्छाके अनुसार चलें। ह
मारकाटसे लोगोंको भयभीत रखना चाहते हैं इसलिये जो सेन
भर्ती हों, वे मारकाटके लिये तैयार रहें।

यह बात बिलकुल झूठ है कि बाहरी देशोंसे आक्रमण होने
भय है। दूसरे देशवाले अपने देशवालोंको धोखेमें रखनेके लि
अपने ऊपर आक्रमण होनेका भय दिखाया करते हैं। इ
मिथ्यापूर्ण घोषणाओंके सिवा लोग यह भी जानते हैं कि सेना
भर्ती होकर दूसरोंकी गुलामी करनी होगी और, मनुष्योंकी जा
लेनेका भीषण काम भी करना होगा, तब भी वे धोखेमें आ जा
हैं और अपनी ही गुलामी बढ़ानेके लिये सरकारोंको रुपया

देते हैं तथा दूसरोंको गुलाम बनानेके लिये सेनामें भी भर्ती हो जाते हैं।

सरकारोंका पशुबल इतना बढ़ा हुआ है कि जो लोग उनकी सेनाओंमें भाग लेनेसे इनकार करते हैं, उन्हें तरह तरहका दण्ड देती हैं। पुलिसद्वारा लोगोंको गिरफ्तार करातीं, उन्हें जेल भेजतीं, कोड़े लगवातीं और देशनिकालेकी आज्ञा देती हैं।

लोग आदमियोंकी जानें लेनेवालोंको वीर बताते, उनकी प्रशंसा करते हैं इसलिये प्रशंसा और पुरस्कारकी इच्छासे वे और भी अधिक नरहत्या करते हैं। जो लोग लड़ाईमें भाग न लेनेसे कालकोठरियोंमें सड़ते और दण्ड खाते हैं, उन बेचारोंके सम्बन्धमें कोई एक बात भी नहीं कहता। लोग कह दिया करते हैं कि सेनामें भर्ती होनेसे इनकारकर लोग व्यर्थ ह [illegible] ो हैं। उनकी मृत्युसे वर्तमान जीवन-क्रम तो बदलेगा नहीं। ईसामसीह जिस समय शूलीपर चढ़े, उनके सम्बन्धमें भी तो यही बात कही गयी थी।

हमारे समयके आदमी और खासकर अपनेको बुद्धिमान् बतानेवाले इतने भावहीन बन गये हैं कि वे आध्यात्मिक शक्तिका महत्व ही स्वीकार नहीं करना चाहते। पचीस सेरका गोला जब जीवित मनुष्योंपर गिराया जाता है तब उसे तो वे ताकत मानते हैं, परन्तु सत्यका उन्हें कोई बल ही नहीं दिखाई देता। इसका कारण यह है कि यह बल धूम तो मचाता नहीं और रक्तकी नदियां तथा हड्डियोंका ढेर भी नहीं दिखाई देता। सरकारें

इस बातको समझती हैं कि आध्यात्मिक शक्ति कितनी बड़ी है इसलिये वे उसे देखकर चिन्तित होने लगती हैं। यही कारण है कि जो आदमी अपने अन्तःकरणके विरुद्ध सेनामें भर्ती होनेके लिये तैयार नहीं होता या सेनाकी नौकरी घृणा प्रकटकर छोड़ना चाहता है, उसे वे कड़ा दण्ड देती हैं।

प्रत्येक सरकार जो पशुबलपर स्थापित है, आध्यात्मिक शक्ति देखकर घबरा जाती है। ईसामसीहने कहा था कि मैंने दुनिया जीत ली। उनका यह कथन वास्तवमें सत्य है यदि लोग उनके दिये हुए अस्त्रकी शक्तिपर विश्वास करने लगें।

यह अस्त्र यही है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्तःकरणकी आज्ञा माने। यह बात इतनी सरल है कि हरएक आदमीकी समझमें आ सकती है। न्यायपरायण आदमी सरकारसे कह सकता है कि मुझे हत्यामें भाग लेनेवाला नहीं बनना है और न मैं हत्यारोंके दलके व्ययके लिये एक पाई भी दे सकता हूं। मैं तुम्हारी आज्ञा न मानकर उस महान् शक्तिकी आज्ञा मानूंगा जिनके अधीन तुम भी हो। उस आज्ञामें साफ कहा गया है कि किसीकी जान मत लो और किसीके प्रति राग-द्वेषतक न करो।

बड़े बड़े समझदार धार्मिक मनुष्य जो किसी पशुकी भी हत्या करनेको तैयार नहीं, तुरन्त ही जान लेनेको तैयार हो जाते हैं यदि उस हत्याका नाम युद्ध बता दिया जाये। वे फिर लोगोंको मारेंगे और लूटेंगे और अपने इस भीषण कार्यका

अभिमान करेंगे। यह आश्चर्य है कि जो श्रमजीवी युद्धका सारा बोझ सहते हैं वे भी लड़नेके लिये तैयार हो जाते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि यदि लड़ाईमें भाग न लिया जायेगा तो और भी अधिक कष्ट उठाना होगा। जो लोग इन श्रमजीवियोंको लड़ाते हैं वे बहुत थोड़े आदमी होते हैं और दूसरेकी कमाई अपनी विलासितामें व्यय करते हैं। वे स्वयं लड़ाईमें भाग नहीं लेते। यह धोखाबाजी बहुत दिनोंसे चल रही है। इधर धोखेबाजोंका दुस्साहस बहुत बढ़ गया है और श्रमजीवियोंकी बहुतसी कमाई लूटने मारनेमें व्यय की जा रही है। सभी देशोंमें श्रमजीवी ही इस भीषण कार्यमें भाग लेनेके लिये बाध्य किये जाते हैं। अन्तर्जातीय सम्बन्ध जानबूझकर जटिलतापूर्ण रखा जाता है जिससे युद्ध छिड़ जाता है। शान्तिपूर्ण देश हर साल किसी न किसी बहानेसे लूटे जाते हैं। सब मारकाट और लूटके भयमें रहते हैं।

यह सब काम केवल इसी लिये हो रहा है कि कुछ थोड़ेसे चालाक आदमी अधिकांश मनुष्योंको धोखेमें डाले हुए हैं। जो लोग जनताको लूट-मारसे सुरक्षित बनाना चाहते हैं, उनका पहला काम धोखेबाजीकी कलई खोलना होना चाहिये जो श्रमजीवियोंको कष्ट दे रही है। लोग यह तो कुछ नहीं करते, परन्तु शान्तिके लिये कभी इस स्थानमें एकत्र होते हैं और कभी दूसरे स्थानमें एकत्र होते हैं। वे मेजोंके पास गम्भीर बनकर विचार करते हैं कि इस लूटमारका अन्त कैसे किया जाये।

वे नाना प्रकारके प्रश्न सामने रखते हैं मानो उन्हें किसी बातका कुछ भी पता नहीं।

यहांपर एक तुलना याद आ जाती है। जुआरी जुएमें फंसकर अपना सर्वस्व खो देते हैं और कभी कभी अपनी जानके भी खतरेमें पड़ जाते हैं; परन्तु वे इसी आशासे जुआ खेलते रहते हैं कि भविष्यमें अवश्य लाभ होगा। जुआ खिलानेवाले कुछ चालाक आदमी उनकी मूर्खतासे लाभ उठाते हैं। हम लोग इस धोखेबाजीको जानते हैं और लोगोंको सङ्कटसे बचानेके लिये उन सब प्रलोभनोंकी पोल नहीं खोलते जिनके वशमें पड़कर वे सर्वस्व खो बैठते हैं। हम उन्हें जुएका पाप नहीं समझाते जो दूसरेके दुर्भाग्यसे लाभ उठानेके लिये खेला जाता है। हम बड़ी गम्भीरतासे सभाएं करते हैं और विचार करते हैं कि जुआ खिलानेवाले किस तरह अपना अड्डा अपने आप बन्द कर दें। हम इस सम्बन्धमें पुस्तकें भी लिखते हैं और इतिहास, कानून तथा उन्नतिकी दृष्टिसे विचार करते हैं कि जुआ खेलना चाहिये या नहीं।

दि किसी आदमीसे शराब छुड़ाना है तो उससे साफ होगा कि तुम स्वयं ही इस बुराईको छोड़ सकते हो। है कि वह इस स्पष्ट उपदेशको मानकर शराब छोड़ दे। यदि इस स्पष्ट उपदेशकी जगहपर उससे कहा कि हम तुम्हारे सम्बन्धमें विचार करनेके लिये सभा करेंगे उसमें जो निश्चय होगा उसे तुम मान लेना

नहीं बड़ा जटिल है, तो शराबी नशा जारी रखेगा और हमारे निश्चयकी राह देखता रहेगा। यही दशा उन अन्तर्जातीय सभाओं और अदालतोंकी है जो लड़ाइयां बन्द करनेके सम्बन्धमें विचार करती हैं। वे सीधा यह काम नहीं करतीं कि जो लोग सेनाओंमें भर्ती होनेके लिये लालायित हो रहे हैं उनसे कह दें कि भर्ती होना पाप है। वे कह दें कि जो लोग लड़ना बुरा काम समझते हैं, वे सेनाओंमें भर्ती न हों।

शान्तिके बुद्धिमान् उपासक इस सरल मार्गको नहीं बताते। वे इस बातका जिक्र भी नहीं सुन सकते। जब यह बात उनके सामने लायी जाती है तो वे उसे ध्यानमें ही नहीं लाते और बहाना बता देते हैं। यदि उन्हें ध्यान देनेके लिये बाध्य ही होना पड़े, तो अपने कन्धे हिलाकर उसे मूर्खतापूर्ण प्रस्ताव कह देते हैं और राय देते हैं कि जब सरल मार्ग है तो इस पागलपनसे लाभ क्या। सरकारोंसे कहा जाये कि वे लड़ाइयां बन्द करनेके लिये सेनाएं भङ्ग कर दें। उनके इस प्रस्तावका यही अर्थ है कि पशुबलप्रधान सरकारें प्रस्ताव मानकर स्वयं नष्ट हो जायें।

वे कहते हैं कि पंचायतों और अन्तर्जातीय अदालतोंकी सहायतासे सरकारोंके बीचके सब झगड़े तय हो सकते हैं। सरकारें झगड़ोंको तय नहीं करना चाहतीं। वे तो यदि कोई झगड़ा न हो तो नया पैदा करती हैं।

बहानाकर वे [illegible] बड़ी [illegible] झगड़ा रहनेका [illegible] है जिनपर

उनकी शक्ति ठहरी हुई है। इस तरह शान्तिके बुद्धिमान् उपासक श्रमजीवियोंका ध्यान उस एक ही मार्गसे हटाना चाहते हैं जो उनका उद्धार कर सकता है। उन्हें देशभक्तिके नामपर धोखेमें डाला जाता है, किरायेके धर्माचार्योंकी शपथोंसे धोखेमें रखा जाता है और सरकारोंके भयसे गुलामीमें फंसाया जाता है।

जो लोग सेनामें भर्ती होनेसे इनकार करते हैं उन्हें सरकारें यदि कड़ा दण्ड दें तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि उनसे वे डरती हैं। वे जानती हैं कि इस इनकारीसे उनका रोब नष्ट होता है जिसमें वे जनसाधारणको फंसाये रखना चाहती हैं। जो लोग इनकार करते हैं, उन्हें पाप करानेवाली सरकारोंसे भयभीत होनेका कोई कारण नहीं। सेनामें भर्ती होनेसे इनकारकर मनुष्य उतना खतरेमें नहीं पड़ता जितना कि सेनामें भर्ती होनेसे पड़ता है। जेल या देशनिकालेका दण्ड मनुष्यको सैनिक सेवाके खतरोंसे सुरक्षित बनाता है। सेनामें भर्ती होनेसे उसे लड़ाईमें भाग लेना पड़ेगा और लड़ाईमें वह मारा जा सकता या घायल हो सकता है। यदि आदमी बीमार पड़ गया, तो उसे बहुत ही [illegible] स्थानोंमें रहकर प्राण त्यागने होंगे। यदि वह सेनामें [illegible] हुआ अपनेसे बड़ेकी आज्ञा न मानेगा, तो उसे इतना [illegible] सकता है जितना कि सैनिक सेवासे इनकार [illegible] भी न मिलता। सैनिक सेवामें भाग न लेनेवाला जेल [illegible] दण्ड पा सकता है, परन्तु सेनामें भर्ती होनेसे पांच वर्षतक बहुत ही भद्दे स्थानोंमें रहना पड़ेगा।

लोगोंकी जानें लेनेका पापपूर्ण काम करना होगा और प्रबन्धकी कड़ाईके कारण जेलकी तरह ही जीवन व्यतीत करना होगा। उसे पतित मनुष्योंकी आज्ञा माननी होगी।

जो आदमी सैनिक सेवा करना स्वीकार नहीं करता उसे यह आशा है कि एक दिन वह दण्डमुक्त कर दिया जायेगा, क्योंकि जब कोई आदमी धोखेमें पड़नेके लिये न मिलेगा तो सरकारका अस्तित्व ही मिट जायेगा। यदि सेनामें भर्ती होना जारी रहेगा, तो कष्टोंके अन्तकी कभी सम्भावना ही नहीं।

सब लोग चाहते हैं कि हमें ऐसा अवसर मिले कि कुछ ईश्वर और भाइयोंकी सेवा की जाये। जिस समय किसीको सेनामें भर्ती होनेकी आज्ञा मिलती है तो उसे उस सेवाका सुअवसर प्राप्त होता है। जो आदमी उसे स्वीकार नहीं करता या सैनिक व्ययके लिये कर नहीं चुकाता, वह वास्तवमें ईश्वर और मनुष्यकी सेवा करता है।

सेनामें भर्ती होकर ऐसे लोगोंकी आज्ञा माननेके लिये तैयार होना जो हत्याको अपना प्रधान उद्देश्य बनाये हुए हैं, नैतिक दृष्टिसे असम्भव काम है। इसलिये सैनिक सेवा अस्वीकार करना मनुष्यका प्रधान कर्तव्य ही नहीं, बल्कि उसे स्वीकार करना असम्भव है यदि मनुष्य दूसरोंके जालमें न फँस गया हो।

लोग प्रश्न करेंगे कि यदि सभी सैनिक सेवा अस्वीकार कर देंगे, तो बदमाशोंको काबूमें रखनेका क्या साधन होगा। मैं मटे

उनकी शक्ति ठहरी हुई है। इस तरह शान्तिके बुद्धिमान् उपासक श्रमजीवियोंका ध्यान उस एक ही मार्गसे हटाना चाहते हैं जो उनका उद्धार कर सकता है। उन्हें देशभक्तिके नामपर धोखेमें डाला जाता है, किरायेके धर्माचार्योंकी शपथोंसे धोखेमें रखा जाता है और सरकारोंके भयसे गुलामीमें फंसाया जाता है।

जो लोग सेनामें भर्ती होनेसे इनकार करते हैं उन्हें सरकारें यदि कड़ा दण्ड दें तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि उनसे वे डरती हैं। वे जानती हैं कि इस इनकारीसे उनका रोब नष्ट होता है जिसमें वे जनसाधारणको फंसाये रखना चाहती हैं। जो लोग इनकार करते हैं, उन्हें पाप करानेवाली सरकारोंसे भयभीत होनेका कोई कारण नहीं। सेनामें भर्ती होनेसे इनकारकर मनुष्य उतना खतरेमें नहीं पड़ता जितना कि सेनामें भर्ती होनेसे पड़ता है। जेल या देशनिकालेका दण्ड मनुष्यको सैनिक सेवाके खतरोंसे सुरक्षित बनाता है। सेनामें भर्ती होनेसे उसे लड़ाईमें भाग लेना पड़ेगा और लड़ाईमें वह मारा जा सकता या घायल हो सकता है। यदि आदमी बीमार पड़ गया, तो उसे बहुत ही गन्दे स्थानोंमें रहकर प्राण त्यागने होंगे। यदि वह सेनामें काम करता हुआ अपनेसे बड़ेकी आज्ञा न मानेगा, तो उसे इतना कड़ा दण्ड मिल सकता है जितना कि सैनिक सेवासे इनकार करनेपर भी न मिलता। सैनिक सेवामें भाग न लेनेवाला जेल या देशनिकालेका दण्ड पा सकता है, परन्तु सेनामें भर्ती होनेसे वर्षतक बहुत ही भद्दे स्थानोंमें रहना पड़ेगा।

तुम्हारे दिमागमें देशभक्तिकी बातें भरते रहते हैं। उनकी बातें सत्य और दयालुताके विरुद्ध हैं। वे तुम्हें धन, स्वतन्त्रता और मानुषिक गौरवसे वञ्चित करनेवाली हैं। जो धोखेबाज धर्मके नामपर लडाई कराना चाहते हैं, उनकी बात भी न सुनो। जो विज्ञान और सभ्यताकी रक्षाकी दुहाई देकर सभाओंमें जाकर बैठते और कितावें लिखते, व्याख्यान देते हैं और उत्तम सामाजिक जीवन तैयार करनेकी दुहाई देते हैं, उनके भी फेरमें न पडो। उनका उद्देश्य किसी तरह वर्तमान क्रमको जारी रखना ही है। वे बातें बनानेके सिवा शान्तिस्थापनके लिये कोई वास्तविक उद्योग नहीं करते। उस जागृतिकी ओर ध्यान दो जो तुमसे कह रही है कि न तो तुम पशु हो और न गुलाम हो, बल्कि स्वतन्त्र मनुष्य हो। तुम अपने कामोंके लिये स्वयं जिम्मेदार हो, इसलिये न तो स्वयं हत्या करो और न हत्यारोंका साथ ही दो। तुम्हें जागृत ही होना चाहिये; फिर तुम्हें पता लग जायेगा कि तुम जो काम कर रहे हो, वे कितने भीषण हैं। इसके बाद तुम उन कार्योंको बन्द कर दोगे जो बुराईकी जड है और तुम्हारा नाश कर रहे हैं। जिस बुराईसे तुम घृणा करते हो यदि उसे करना छोड दोगे, तो वे धोखेबाज जो पहले तुम्हें डराकर पीछे तुमपर अत्याचार करते हैं, इस तरह भाग जावेंगे जिस तरह सूर्यकी रोशनी देखकर उल्लू भाग जाते हैं।

(२)

हरएक आदमी जानता है कि लडाईका समर्थन करनेवालों-

आदमियोंको सताने लग जायेंगे और जनताकी अत्याचारोंसे रक्षा न हो सकेगी।

यह भय कि बदमाश भले आदमियोंको सताने लग जायेंगे, क्या अर्थ रखता है जब कि वे आज भी तो भले आदमियोंको सता रहे हैं? जो काम पहलेसे ही जारी है, उसके सम्बन्धमें भय क्यों? इसके साथ ही यदि और किसी जातिके आक्रमणका भय है, तो भी क्या इतनी बड़ी बड़ी सेनाएं प्रत्येक देशको रखनी चाहिये?

मनुष्यका सबसे उत्तम पथप्रदर्शक उसका अन्तःकरण है। उसके अनुसार काम करता हुआ वह कह सकता है कि मुझे जो करना चाहिये वही कर रहा हूं। इसलिये सेनामें भर्ती न होनेपर दण्डका भय और सेना न होनेपर बदमाशोंके आक्रमणका भय उस बड़ी धोखाबाजीका अङ्ग है जो सरकारें अपना अस्तित्व बनाये रखनेके लिये काममें ला रही हैं।

लोग संसारकी दुर्दशाकी शिकायत कर रहे हैं, परन्तु यह दुर्दशा उपस्थित होनी स्वाभाविक है; क्योंकि हम ईश्वरकी आज्ञा काममें नहीं लाते जो इस प्रकार है—तुम किसीकी जान मत लेना। मनुष्योंके बीच भ्रातृभाव होना चाहिये उस सिद्धान्तका हम गला घोंट रहे हैं। किसी भी राजा, बादशाह या राष्ट्रपतिके इशारेपर ईश्वरीय आज्ञा भुला दी जाती है और मनुष्य, मनुष्यको मार डालनेके लिये तैयार हो जाता है। जिस समाजमें ऐसे लोग हों, वह भीषण न हो तो क्या हो। वह इसीसे ऐसी है।

भाइयो! जागो। उन धूर्तोंकी बात न सुनो जो बचपनसे ही

ही नहीं। वे उन्हींकी सेवा करना चाहती हैं जो दूसरोंकी हत्या करनेके कामपर लग गये हैं। जो लोग घरोंमें रह जाते हैं वे नरहत्याके समाचार सुनकर बड़े प्रसन्न होते हैं और जो प्रसन्न नहीं होता उसे तङ्ग करते हैं, उसकी हंसी करते हैं। जब वे सुनते हैं कि इतने शत्रु मारे गये तो वे उसे धन्यवाद देते हैं जिसे ईश्वर कहनेका साहस करते हैं।

हमारे जमानेके लोगोंका यह हाल है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि हम इसी तरह स्वार्थकी ओर ध्यान रखकर एक दूसरेसे लड़नेको तैयार रहेंगे, तो पशुबलका प्राधान्य बढ़ाते हुए अपना नाश जारी रखेंगे। अपनी कमाई अस्त्रशस्त्र बढ़ानेमें लगाते रहेंगे और आपसकी लड़ाइयोंमें हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंको खतमकर हम दिनपर दिन पतित बनते जायेंगे।

सैनिक, सेनापति या राष्ट्रपति प्रश्न कर सकता है कि इस समय अब हम क्या करें, जब कि हमपर शत्रुकी चढ़ाई हो रही है और हमारे आदमी मारे जा रहे हैं। क्या हम अपना धन जन लड़ाई न छेड़कर नष्ट हो जाने दें। हमारी कमाई दूसरोंके हाथमें चली जाये। क्या हमारे आदमी कैद होकर शत्रुके पास चले जावें। सब हो रहा है तो हम क्या करें?

कि जो आदमी अपना कर्तव्य निश्चित हो जाये और हजारों देशवा- अनेक स्थान भी छिन -र नहीं हो सकता।

की दलीलें कमजोर हैं। उसका समर्थन केवल इस कारण किया जाता है कि प्रत्येक मानुषिक सङ्कटसे कुछ न कुछ लाभ अवश्य है। कभी कभी यह बेतुकी बात भी कह दी जाती है कि लड़ाइयां हमेशासे होती चली आ रही हैं इसलिये वे जारी रहेंगी। इसका यह अर्थ है कि बुरे काम किये जा सकते हैं यदि वे कुछ लाभ पहुंचानेवाले हों या वे इसलिये करने योग्य हैं कि बहुत दिनोंसे होते चले आ रहे हैं। सब बुद्धिमान् आदमी इस बातको जानते हैं, परन्तु ज्यों ही लड़ाई आरम्भ होती है तो वह सब बातें तुरन्त भुला दी जाती हैं और जो कलतक लड़ाईकी भयङ्करता हानिपर व्याख्यान दे रहे थे, मनुष्योंकी हत्या करने और म- परिश्रमके फलको नष्ट करनेपर जोर देने लग जाते हैं सीधेसादे मिहनती और शान्त मनुष्योंको उत्तेजित जाते हैं जो अपनी मिहनतसे इन बुद्धिमानोंका पेट बुद्धिमान् मनुष्य उनसे अन्तःकरण और काम कराते हैं।

नवयुवक मदान्ध

होकर, अपने

रोता छोड़ बड़ी

अपनी जान खतरेमें

करते हैं। उनके पीछे

हैं मानों उन्हें अपने

ही नहीं। वे उन्हींकी सेवा करना चाहती हैं जो दूसरोंकी हत्या करनेके कामपर लग गये हैं। जो लोग घरोंमें रह जाते हैं वे नरहत्याके समाचार सुनकर बड़े प्रसन्न होते हैं और जो प्रसन्न नहीं होता उसे तङ्ग करते हैं, उसकी हंसी करते हैं। जब वे सुनते हैं कि इतने शत्रु मारे गये तो वे उसे धन्यवाद देते हैं जिसे ईश्वर कहनेका साहस करते हैं।

हमारे जमानेके लोगोंका यह हाल है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि हम इसी तरह स्वार्थकी ओर ध्यान रखकर एक दूसरेसे लड़नेको तैयार रहेंगे, तो पशुबलका प्राधान्य बढ़ाते हुए अपना नाश जारी रखेंगे। अपनी कमाई अस्त्रशस्त्र बढ़ानेमें लगाते रहेंगे और आपसकी लड़ाइयोंमें हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंको खतमकर हम दिनपर दिन पतित बनते जायेंगे।

सैनिक, सेनापति या राष्ट्रपति प्रश्न कर सकता है कि इस समय अब हम क्या करें, जब कि हमपर शत्रुकी चढ़ाई हो रही है और हमारे आदमी मारे जा रहे हैं। क्या हम अपना धन जन लड़ाई न छेड़कर नष्ट हो जाने दें। हमारी कमाई दूसरोंके हाथमें चली जाये। क्या हमारे आदमी कैद होकर शत्रुके पास चले जायें। जब यह सब हो रहा है तो हम क्या करें?

मैं तो यही जवाब दूंगा कि जो आदमी अपना कर्तव्य निश्चित कर चुका है वह चाहे लड़ाई शुरू हो जाये और हजारों देशवासियोंकी हत्या भी होने लगे तथा एक नहीं अनेक स्थान भी छिन रहे यह लड़ाईमें भाग लेनेके लिये तैयार नहीं हो सकता।

लीले कमजोर हैं। उसका समर्थन केवल इस कारण जाता है कि प्रत्येक मानुषिक सङ्कटसे कुछ न कुछ लाभ है। कभी कभी यह बेतुकी बात भी कह दी जाती है कि इयां हमेशासे होती चली आ रही हैं इसलिये वे जारी रहेंगी। का यह अर्थ है कि बुरे काम किये जा सकते हैं यदि वे कुछ पहुंचानेवाले हों या वे इसलिये करने योग्य हैं कि बहुत से होते चले आ रहे हैं। सब बुद्धिमान् आदमी इस बातको ते हैं, परन्तु ज्यों ही लड़ाई आरम्भ होती है तो वह सब बातें न्त भुला दी जाती हैं और जो कलतक लड़ाईकी भयङ्करता और नेपर व्याख्यान दे रहे थे, मनुष्योंकी हत्या करने और मनुष्यके श्रमके फलको नष्ट करनेपर जोर देने लग जाते हैं। वे उन धेसादे मिहनती और शान्त मनुष्योंको उत्तेजित करने लग ते हैं जो अपनी मिहनतसे इन बुद्धिमानोंका पेट भरते हैं। यही द्धिमान् मनुष्य उनसे अन्तःकरण और धर्मके विपरीत भीषण म कराते हैं।

अनेक प्रकारकी प्रार्थनाओं,प्रशंसाओं और समाचारपत्रसम्बन्धी ख पढ़कर हजारों नवयुवक मदान्ध हो पोशाकें पहनकर, भीषण स्त्रशस्त्रोंसे सुसज्जित होकर, अपने भाई-बन्धुओं,मातापिताओं,स्त्री-च्चोंको घरपर रोता छोड़ बड़ी बहादुरीके साथ लड़नेके लिये जाते हैं और अपनी जान खतरेमें डालकर दूसरोंके प्राण लेनेका भीषण काम करते हैं। उनके पीछे सैकड़ों डाक्टर और दाइयां रवाना होती हैं मानों उन्हें अपने देशके गरीबोंकी सेवा करनेका मौका

ही नहीं। वे उन्हींकी सेवा करना चाहती हैं जो दूसरोंकी हत्या करनेके कामपर लग गये हैं। जो लोग घरोंमें रह जाते हैं वे नरहत्याके समाचार सुनकर बड़े प्रसन्न होते हैं और जो प्रसन्न नहीं होता उसे तङ्ग करते हैं, उसकी हंसी करते हैं। जब वे सुनते हैं कि इतने शत्रु मारे गये तो वे उसे धन्यवाद देते हैं जिसे ईश्वर कहनेका साहस करते हैं।

हमारे जमानेके लोगोंका यह हाल है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि हम इसी तरह स्वार्थकी ओर ध्यान रखकर एक दूसरेसे लड़नेको तैयार रहेंगे, तो पशुबलका प्राधान्य बढ़ाते हुए अपना नाश जारी रखेंगे। अपनी कमाई अस्त्रशस्त्र बढ़ानेमें लगाते रहेंगे और आपसकी लड़ाइयोंमें हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंको खतमकर हम दिनपर दिन पतित बनते जायेंगे।

सैनिक, सेनापति या राष्ट्रपति प्रश्न कर सकता है कि इस समय अब हम क्या करें, जब कि हमपर शत्रुकी चढ़ाई हो रही है और हमारे आदमी मारे जा रहे हैं। क्या हम अपना धन जन लड़ाई न छेड़कर नष्ट हो जाने दें। हमारी कमाई दूसरोंके हाथमें चली जाये। क्या हमारे आदमी कैद होकर शत्रुके पास चले जायें। जब यह सब हो रहा है तो हम क्या करें?

मैं तो यही जवाब दूंगा कि जो आदमी अपना कर्तव्य निश्चित कर चुका है वह चाहे लड़ाई शुरू हो जाये और हजारों देशवासियोंकी हत्या भी होने लगे तथा एक नहीं अनेक स्थान भी छिन रहे वह लड़ाईमें भाग लेनेके लिये तैयार नहीं हो सकता।

ईश्वरकी आज्ञा समझ लेनेपर उसके विपरीत काम नहीं किया जा सकता। आदमी यही कह सकता है कि मैं भाग न लूंगा, भाग ले नहीं सकता और न भाग लेनेकी इच्छा करता हूं। मैं यह नहीं जान सकता कि ईश्वरीय आज्ञाके विपरीत काम न करनेसे क्या होगा, परन्तु मुझे इस बातका विश्वास है कि ईश्वरीय आज्ञाका पालन लाभदायक होनेके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता।

आक्रमण करनेवाले शत्रुओंका फिर क्या हो? धर्मकी आज्ञा है कि शत्रुओंपर प्रेम दिखाओ तो फिर वे न रहेंगे। बहुतसे लोग कहेंगे कि यह बात सिर्फ कहनेके लिये ही है, क्योंकि शत्रुओंके प्रति प्रेम दिखानेकी बात उन्हें अतिरञ्जित मालूम होगी। परन्तु यह कार्य सब परिणामोंको अच्छी तरह समझ लेनेपर एक निश्चित नीतिका फल है।

शत्रुओंसे प्रेम करनेका यह अर्थ होगा कि उन्हें न मारा जाये और उन्हें अफीम देकर नष्ट न किया जाये जिस तरह कि अंग्रेजोंने किया, उनकी जमीन छीननेके उद्देश्यसे उन्हें नष्ट न किया जाये जिस तरह कि फ्रांसीसी, रूसी और जर्मनोंने किया। उन्हें जीवित न गाड़ा जाये और न उनके बाल बांधकर उन्हें एक साथ बांधा जाये या नदीमें डुबाया जाये जैसा कि रूसियोंने किया।

जिन्हें हम अपना शत्रु कहते हैं, उनपर प्रेम करनेका अर्थ यह नहीं कि उन्हें अपने समान झूठे धार्मिक सिद्धान्त सिखाकर

दूसरोंको मारनेके लिये राजी किया जाये, वल्कि उन्हें न्याय, निःस्वार्थता, दयालुता और प्रेम सिखाया जाये और यह शिक्षा शब्दोंद्वारा नहीं बल्कि आचरणद्वारा दी जाये।

धोखेमें पड़े हुए आदमी कब कहने लग जायेंगे कि राजा, बादशाह, मन्त्री, पत्र-सम्पादक या फाटकिये जो दूसरोंको लड़नेका उपदेश दिया करते हैं स्वयं ही गोलियोंकी बौछारके नीचे जाकर लड़ें। हम लोग नहीं जाना चाहते। हम लोग शान्तिपूर्वक खेती करेंगे और तुम आलसियोंका भी पेट भरेंगे। यह कहना स्वाभाविक भी मालूम होगा।

अभी तो वे ऐसा नहीं कहते। वे लड़नेके लिये जा रहे हैं और जाते रहेंगे। वे जानेके सिवा और क्या कर सकते हैं जब कि उन्हें अपने शरीरका तो ख्याल है, परन्तु शरीर और आत्मा दोनोंका ख्याल नहीं। वे दण्डसे शरीरकी रक्षा तो करना चाहते हैं, परन्तु भयङ्कर पतनसे अपनी आत्मा और मौत या गोलियोंसे शरीरकी रक्षा नहीं करना चाहते।

शिक्षापर लड़ाई वन्द होनेका सहारा है। लोगोंको सिखाया जाये कि दूसरोंकी जान लेना बुरा काम है। जो उच्च श्रेणीके लोग अपने लाभके लिये लड़ाई छेड़ना चाहते हैं, उनकी आज्ञाओंका धीरे धीरे विरोध किया जाये। जो उपदेशक स्वार्थसाधनके लिये देशभक्तिकी दुहाई देकर उन सीधे आदमियोंपर गोलियां चलवाना चाहते हैं जो अपने घरोंकी रक्षा-कर रहे हैं, उनका उपदेश घृणाकी दृष्टिसे देखा जाये। इस प्रकार शान्तिकी

शिक्षाका प्रचार करने और लड़ाईकी भयंकरता तथा पापका परिचय करानेसे वे लोग भी लड़नेके लिये उत्साहित न होंगे जो सेनामें भर्ती हो चुके हैं।

लोग जिस संसारमें धनके लिये एक दूसरेका गला काटनेको तैयार हैं, वे मेरी बातें सुनकर मुझे अवश्य ही पागल बतायेंगे; परन्तु मेरी तो दृढ़ धारणा हो गयी है कि युद्ध एक प्रकारका विस्तृत व्यापार ही है जो कुछ थोड़ेसे उच्चाभिलाषी चला रहे हैं और जनताकी प्रसन्नता इस व्यापारके चक्करमें आ गयी है।

जिन लोगोंने कभी एक दूसरेको देखातक नहीं और न कभी एक दूसरेको हानि ही पहुंचायी है, वे अचानक एक दूसरेको मारनेके लिये पशुओंकी तरह तैयार हो जायें यह कितनी रोमाञ्चकारी बात है। आश्चर्य तो इस बातका है कि इन भीषण कामोंमें भी लोग ईश्वरकी सहायताका नाम लेते हैं और अपने पाशविक कामोंके साथ उसका पवित्र नाम जोड़ते हैं।

सरकारोंके नाशसे युद्धकी सम्भावना मिट जायेगी। यदि सरकारोंके बिना लोगोंको भूखों मर जानेका भय है, तो रूस, इटाली और भारतमें क्या हो रहा है। यदि न्याय और शिक्षापर आघात होगा, तो उनका उतना ही अंश नष्ट होगा जो आज जनताकी उन्नति न कर उसमें उल्टा बाधक हो रहा है। यदि अराजकता और अशान्ति फैलेगी, तो वह इतना अनर्थ नहीं कर सकती जितना कि सरकारें करा रही हैं।

मनुष्यो! होशमें आ जाओ और सोचो कि तुम क्या कर

रहे हो। अपने भाई-बहिनोंके हितके नामपर सोचो कि तुम क्या कर रहे हो। तुम्हारे शत्रु दूसरे देशके लोग नहीं, बल्कि स्वयं तुम हो। तुम स्वार्थियोंकी बात मानकर गुलाम बन रहे हो। तुम कभी यह मत समझो कि दूसरे देशवाले तुम्हारे किसी भी हितमें बाधक हैं। तुम दूसरोंसे जो कुछ छीनते हो और अपनी सरकारोंको देते हो, उससे उनका पशुबल बढ़ता और तुम्हारा अहित होता है इसलिये देशभक्तिके फेरमें पड़कर दूसरोंकी स्वतन्त्रता छीनना त्याग दो। तुम इस मातृभूमि या उस पितृभूमिके नहीं, बल्कि एक परमेश्वरके पुत्र हो। इसलिये न किसीके गुलाम और न शत्रु बनो। तुम्हारे सब कष्ट दूर हो जायेंगे।



पाँचवाँ अध्याय।



युगान्तर।

(१)

धार्मिक पुस्तककी भाषामें युग या युगान्तका अर्थ किसी शताब्दीका अन्त या प्रारम्भ नहीं है। उसका अर्थ मनुष्योंके बीचके सामाजिक सम्बन्धके एक ढङ्ग, जीवनसम्बन्धी एक मत तथा एक विश्वासका अन्त और सामाजिक सम्बन्धके दूसरे ढङ्ग, जीवन-सम्बन्धी दूसरे मत और दूसरे विश्वासका आरम्भ है। धर्मग्रन्थमें लिखा हुआ है कि इस परिवर्तनके समय सब तरहके कष्ट होंगे। विश्वासघात, धोखे, निर्दयता और लड़ाइयां होनेके साथ ही साथ कानूनी पाबन्दीके अभावसे प्रेम शिथिल होगा। मैं इन बातोंको ईश्वरकी भविष्यवाणी नहीं मानता। मनुष्यका एक प्रकारका जीवन-क्रम और विश्वास बदलता है तो अशान्ति और अनियमबद्धता होनी स्वाभाविक है, जिससे मनुष्यके सामाजिक जीवनका प्रेमबन्धन अवश्य ही शिथिल पड़ना चाहिये। रूसमें ही नहीं, तमाम ईसाई देशोंमें यह परिवर्तन उपस्थित हो रहा है। रूसमें परिवर्तनने स्पष्ट रूप धारण कर लिया है, परन्तु अन्य ईसाई देशोंमें वह छिपा हुआ

है। प्रत्येक ईसाईका जीवन इस समय दो युगोंको विभक्त करनेवाली सीमापर है। दो हजार वर्षसे तमाम ईसाई संसारमें जो क्रान्ति तैयार हो रही थी, वह आरम्भ हो गयी है। झूठे धर्मकी जगह सच्चा धर्म स्थापित हो रहा है जिसके फलस्वरूप एक मनुष्यका दूसरेपर प्राधान्य न रहकर मनुष्योंके बीच समानता और सच्ची स्वतन्त्रता बढ़ रही है। ये दो गुण सभी समझदार मनुष्योंके लिये आवश्यक हैं।

इस मत-परिवर्तनका बाह्य स्वरूप यह है कि सभी देशोंमें भिन्न भिन्न श्रेणियोंके बीच भीषण प्रतिद्वन्द्विता उपस्थित हो गयी है। एक ओर तो धनवानोंकी निकृष्ट निर्दयता और दूसरी ओर गरीबोंकी निराशा दिखाई दे रही है। एक दूसरे राष्ट्रके विरुद्ध अस्त्रशस्त्र बढ़ाये जा रहे हैं और साम्यवादका प्रचार बढ़ रहा है जो कभी काममें नहीं आ सकता। भावी क्रान्तिके यही लक्षण उपस्थित हो रहे हैं। क्रान्तिका श्रीगणेश रूस-जापानी युद्धने किया, जो अभी हालहीमें समाप्त हुआ है। इस युद्धके कारण रूसकी जनतामें क्रान्तिकारी आन्दोलन उपस्थित हो गया है जो पहले कभी न था।

जापानने रूसको हरा दिया और इस हारका कारण रूसी राजनीतिज्ञोंका दुराचरण बताया जाता है। रूसमें जो क्रान्तिकारी आन्दोलन आरम्भ हुआ, उसका कारण कुशासन तथा क्रान्तिकारियोंकी बढ़ी हुई चेष्टा बताया जाता है। रूसी तथा विदेशी राजनीतिज्ञ इन कारणोंसे रूसकी शक्ति क्षीण होती देख

रहे हैं और समझते हैं कि अन्तर्जातीय सम्बन्धका केन्द्र बदल रहा है। रूसकी शासनप्रणाली बदलनेकी भी आशा की जाती है।

मेरी रायमें इन घटनाओंका महत्व और भी अधिक है। रूसी स्थल और जलसेना तथा रूसी शासन-सङ्गठनकी हार रूसी सरकारके नाशका चिन्ह है। रूसी सरकारका नाश झूठी ईसाई सभ्यताके नाशका चिन्ह है। यह पुराने युगका अन्त और नयेका आरम्भ है।

ईसाई देश जिन कारणोंसे वर्तमान अवस्थाको प्राप्त हुए हैं, वह कारण बहुत पहलेसे काम करते आ रहे हैं। जिस समयसे ईसाई धर्म राष्ट्रधर्म मान लिया गया, उसी समयसे परिवर्तन आरम्भ हुआ।

प्रत्येक ईसाई देश पशुबलपर स्थापित है। धार्मिक कानूनोंकी अपेक्षा सरकारी कानून बड़े माने जाते हैं और उनके अनुसार सबको बाध्य होकर चलना पड़ता है। सरकारें फांसी, सेनाओं और लड़ाइयोंको आवश्यक मानती हैं। शासक ईश्वरीय अधिकार रखनेवाले माने जाते हैं, धन-बलकी प्रशंसा होती है। इस अवस्थामें ईसाई धर्म राष्ट्रधर्म माना गया है यानी देशके शासक और शासित ईसाई धर्म माननेकी दुहाई देते हैं जिस धर्मने मनुष्योंके बीच पूर्ण समानता मानी है, जो सब प्रकारके पशुबल, फांसी और युद्धोंको न मानकर शत्रुओंसे भी प्रेम करनेका आदेश देता है, धनबलकी जगह नम्रता और निर्धनताकी प्रशंसा करता है और मनुष्योंके कानूनसे ईश्वरीय

कानून ऊंचा मानता है। इससे स्पष्ट है कि असली ईसाई धर्म नहीं, बल्कि उसका नकली स्वरूप राष्ट्रधर्म माना गया है जिससे अधार्मिक जीवन व्यतीत हो रहा है। शासक और शासित धर्मके असली तत्वको नहीं समझ रहे हैं और उन लोगोंसे नाराज होते हैं जो सच्चे धर्मका प्रचार करनेवाले हैं। वे शान्त अन्तःकरणसे सच्चे प्रचारकोंको फांसीपर लटकाते, देशनिकालेका दण्ड देते और सच्चे धर्म-प्रचारको रोकते हैं। धर्माचार्य सरकारों और ईसाई धर्मके बीच जो मेल सम्भव नहीं, उसे किसी तरह स्थापित करते हैं और लोगोंको भुलावेमें डालनेके लिये नयी रस्में तैयार-कर काममें लाते हैं। इस तरह वर्षोंतक लोग सच्चे ईसाई न रहकर अपनेको ईसाई ही मानते रहते हैं।

सरकारोंने अपनी शक्तिके भरोसे सच्चे धर्मका कितना ही गला घोंटा हो, परन्तु अन्तमें सत्यका संहार न हो सका। मनुष्यों-का आत्मज्ञान ज्यों ज्यों बढ़ता गया, त्यों त्यों यह बात स्पष्ट होती गयी कि नम्रताको प्राधान्य देनेवाले धर्म तथा पशुबलपर स्थापित सरकारोंके बीच कोई सम्बन्ध ही नहीं हो सकता। बड़ेसे बड़ा बांध संसारमें बहते हुए पानीकी तेज धाराको नहीं रोक सकता। पानी या तो बांध तोड़कर निकल जायेगा, बांधको हटाकर निकल जायेगा या बांधकी दोनों ओरसे घूमकर निकल जायेगा। वह कब निकलेगा, यही विचारकी बात है। सर-कारोंकी शक्तिसे गुप्त रखी हुई धर्मकी ताकतका भी यही हाल है। सरकारोंने अधिक कालतक बहते हुए पानीकी

धाराको रोका और अन्तमें ईसाई धर्म उन बांधोंको नष्टकर निकल भागा ।

ईसाई धर्म अपने वहावमें सरकारोंका नष्ट हुआ अंश भी लिये जा रहा है। जापानियोंने विना किसी विशेष चेष्टाके रूसियोंको हरा दिया और इस हारके बाद ही रूसकी जनतामें अशान्ति वढ़ गयी—ये बाहरी लक्षण नये युगके आरम्भके हैं।

(२)

रूसी हारका कारण सेनाके दूषित सङ्गठन, सेनापतियोंकी भूलों आदिमें ढूंढ़ा जाता है, परन्तु यह बात नहीं है। जापानियोंने रूसी सैनिक सङ्गठनकी कमजोरी या शासनकी बुराईके कारण विजय नहीं प्राप्त की। अधिक सैनिक शक्तिने उन्हें विजय प्राप्त करायी है। जापान इसलिये नहीं जीता कि रूस कमजोर है, बल्कि इसलिये कि स्थल और जलसेनामें वह संसारके सभी देशोंसे वढ़ा चढ़ा है। जापानी विजयने रूसको ही नहीं, सारे ईसाई संसारको बता दिया कि बाहरी सभ्यतासे कुछ काम नहीं चल सकता जिसका ईसाई देशोंको इतना अभिमान है। यह सभ्यता विशेष महत्व नहीं रखती जिसे वे वर्षोंके परिश्रमका फल समझ रहे हैं। जापानी किसी विशेष आध्यात्मिक शक्तिमें प्रसिद्ध न होनेपर भी कुछ ही वर्षोंमें ईसाई देशोंके वैज्ञानिक ज्ञानको प्राप्त कर बैठे और वे इतने क्रियाशील निकले कि जिस सैनिक शक्तिको ईसाई देश इतने महत्वकी समझते हैं, उसीमें सबसे आगे बढ़ गये।

वर्षों आत्मरक्षाके बहाने ईसाई देशोंने एक दूसरेके नाशके लिये नये नये साधन तैयार किये। उन्होंने इन साधनोंद्वारा एक दूसरेको भयभीत रखा और एशिया, अफ्रीकाके असभ्य राष्ट्रोंसे हर तरहका लाभ उठानेकी चेष्टा की। गैर-ईसाई देशोंमें एक देश ऐसा निकला जिसने सङ्कटका अनुमानकर ईसाई देशोंकी तरह अपनी सैनिक शक्ति बहुत ही जल्दी बढा ली। वह उनसे भी अधिक शक्तिशाली बन गया, क्योंकि वह साधारण नियम समझ गया कि यदि कोई तुम्हें मजबूत डण्डेसे मारे तो तुम उससे भी मजबूत डण्डा लेकर मारनेवालेको मार दो। जापानी अपनी देशभक्ति और धार्मिक निरंकुशतासे और भी अधिक लाभ उठा सके। इस तरह वे संसारमें सैनिक शक्ति प्राप्त करनेवाले बने। सब सैनिक शक्तियां समझ गयी हैं कि गैरईसाई देशोंके पास भी सैनिक शक्ति जा रही है या अवश्य जायेगी। एशिया और अफ्रीकाके जो देश ईसाई देशोंके अत्याचारोंसे पीडित हैं, जापानका अनुकरण आसानीसे कर सकते हैं। सैनिक शक्ति रखनेवालोंको भय है कि ये देश हमारी तरह ही सैनिक शक्ति प्राप्तकर कहीं अपनेको अत्याचारमुक्त करते हुए संसारसे ईसाई सरकारोंका नाम ही न मिटा दें।

इस भयने ईसाई सरकारोंको और भी अधिक शक्ति बढानेका मार्ग दिखाया है। यद्यपि जनता सैनिक व्ययसे दबी हुई है, परन्तु वे अपनी शक्ति बढा रही हैं। वे समझती हैं कि गैर-ईसाई देश जापानका अनुकरणकर सैनिक शक्ति प्राप्तकर कहीं

शासकवर्गके मनुष्योंको भी हुआ और फ्रांसमें यह जागृति विशेष रूपसे उत्पन्न हुई जिससे वहां क्रान्ति उपस्थित हुई। समानता प्राप्त करनेका साधन स्वाभाविक रूपसे यही समझा गया कि अधिकारियोंके पास जो अधिकार हैं, वे पशुबलद्वारा उनसे छीन लिये जायें। इसलिये १७९३ में मारकाटसे काम लिया गया।

अब सन् १९०५ में स्वतन्त्र जीवनकी सम्भावना और पशुबलप्रधान अधिकारियोंकी दासताके बीच जो विरोधपूर्ण अवस्था है उसका ज्ञान हो रहा है और यह ज्ञान केवल जनताको ही नहीं, बल्कि शासकवर्गके मनुष्योंमें भी उत्पन्न हो रहा है। रूसमें इस सम्बन्धमें विशेष जागृति है, क्योंकि रूसी सरकारने अकारण ही जनताको जापानसे भिड़ाकर धनजनका नाश किया और दूसरा कारण जागृतिका यह है कि रूसी जनता आज भी कृषिजीवन व्यतीत करनेवाली तथा ईसाई धर्मका सार समझनेवाली है। १९०५ की क्रान्ति इसलिये रूसमें ही सबसे पहले आरम्भ होनी चाहिये। जिस मारकाटका सहारा लेकर लोगोंने अबतक समानता स्थापित करनेकी चेष्टा की है, उससे भिन्न कोई नया साधन नवीन क्रान्ति उपस्थित करनेमें काममें लाया जाना चाहिये। मारकाटकी सहायतासे समानताकी स्थापना नहीं हुआ करती। मारकाट स्वयं ही असमानताका स्थूल रूप है। जो लोग नयी क्रान्ति मारकाटसे पुराने ढङ्ग काममें लाकर उपस्थित करना चाहते हैं, वे बड़ी भारी भूल करते हैं।

यह मारकाटका युग नहीं। मारकाटसे कभी सच्ची स्वाधी-
नता नहीं प्राप्त हुई, यह बात भी स्पष्ट है। लोग अब यह य
यह अधिकार नहीं चाहते और न एककी जगह दूसरी पशुबल
प्रधान सरकार ही चाहते हैं। वे तो सच्ची स्वाधीनता
अभिलाषी हैं।

रूसमें ही नहीं, तमाम संसारमें जो नवीन क्रान्ति उपवि
रही है उसका यह महत्व नहीं कि जनता कुछ नयी संस्थाः
ी सृष्टि चाहती है या ऐसे दिखावटी निर्वाचन अधिः
ाहती है कि वह शासनमें भाग लेनेवाली मानी जाये।
प्रजातन्त्र शासन भी नहीं चाहती—वास्तविक स्वतन्त्रता
हती है।

नकली नहीं, असली स्वतन्त्रता जब प्राप्त करनी है तो
या पशुबलसे काम न चलेगा, न ऐसी संस्थाओंसे काम ः
जो डरा-धमकाकर स्थापित कर दी जायें। वह स्वतन्त्र
उसी समय प्राप्त होगी जब कि किसी भी मानुषिक श
आज्ञापालन न किया जाये।

(४)

भावी क्रान्तिका प्रधान कारण अन्य क्रान्तियोंके स
धार्मिक है। धर्मका अर्थ कुछ रीति-रस्म समझे जाते
सृष्टिकी उत्पत्तिका कारण बताना आदि धर्म माना
या नैतिक नियमोंको धर्ममें शामिल किया जाता ह
असली धर्म सब मनुष्योंके बीच प्रधान नियमको प्र

वाला है जो हर समय मनुष्योंका अधिकसे अधिक कल्याण कर सके।

यह प्रधान नियम प्राचीन कालसे सिखाया जा रहा है कि मनुष्य केवल अपने लाभके लिये जीवन व्यतीत न करे, परन्तु सब एक दूसरेका कल्याण करनेके लिये पारस्परिक सहायता करें। इस नियमकी सचाई और लाभ सभी स्वीकार करते हैं। परन्तु लोगोंकी दिनचर्यामें उस नियमकी जगहपर पशुबलको इतना स्थान मिल गया है कि लोग समझने लग गये हैं कि बुराईके बदले बुराई न करने और किसीको डराये बिना काम ही नहीं चल सकता। कुछ लोगोंने इसीलिये कानून बना डाले हैं और उन्हें काममें लानेका भार अपने ऊपर ले लिया है। उन्हें ऐसे भी आदमी मिल गये हैं, जो उनकी आज्ञा मानने लग गये हैं। शासन करनेवाले अधिकारके मदमें पतित हो गये और उनके कामोंमें सहयोग देनेवाले भी पतित बन गये। इस पतनसे बचनेका एक ही उपाय है कि पशुबलका नाश किया जाये। उससे छुटकारा पानेका यही उपाय है कि शान्तिपूर्वक सहन किया जाये और बदलेका ध्यान भी न हो। यदि लोग भयानकसे भयानक उत्तेजना उपस्थित होनेपर काममें न लायें, तो पशुबल न रहेगा। यह है कि बुराईसे बुराई दूर नहीं की जा बुराई दूर करनेके लिये पशुबलसे काम न लोग पारस्परिक सहायताका महत्व

प्रतिरोध या सत्याग्रहको स्वीकार नहीं करते, जिसके बिना पारस्परिक सहायताका भवन ही नहीं खड़ा हो सकता।

लोग यही समझते रहे कि शान्तिपूर्वक बुराईका सहन किये बिना उत्तम जीवन-क्रम निश्चित किया जा सकता है। परन्तु ऐसा न हो सका। बुराईके लिये प्रतीकारकी इच्छा रखनेवाले एक दूसरेके विरोधमें अपनी शक्ति बराबर बढ़ाते चले गये और सरकारोंको एक दूसरेको हड़प करनेके लिये बड़ी तैयारी करनी पड़ी। घृणाका भाव यहांतक बढ़ता चला गया कि परस्परकी सहायताका सिद्धान्त ही हवा हो गया।

भावी क्रान्तिका प्रधान धार्मिक कारण यही है कि पारस्परिक सहायताके नियमके साथ निष्क्रिय प्रतिरोधकी भी आवश्यकता समझी गयी है।

बुराईके बदले बुराई करनेसे वह बढ़ती ही है। पशुबलके विरुद्ध पशुबलको काममें न लानेसे ही सच्ची स्वाधीनता प्राप्त हो सकती है जो मनुष्यके लिये स्वाभाविक है। जो मनुष्य मारकाट-का सामना मारकाटसे करनेके लिये तैयार होता है वह तुरन्त ही अपने आपको स्वतन्त्रतासे वञ्चित कर लेता है। जब वह स्वयं पशुबलका प्रयोग करता है तो यह बात भी स्वीकार कर लेता है कि दूसरे भी पशुबल काममें ला सकते हैं। वह जिस पशुबलके विरुद्ध लड़ता है उससे जीता जा सकता है। यदि वह स्वयं विजय प्राप्त करता है तो उसे भय रहता है कि भविष्यमें वह उससे हार जायेगा जो उससे अधिक पशुबल काममें लायेगा।

वही मनुष्य स्वतन्त्र हो सकता है जो सभी मनुष्योंमें समान प्रधान नियमका पालन करता है। इस नियमके पालनमें कोई बाधा भी नहीं है। पशुबलको चुपचाप सह लेनेसे संसारमें पशुबल घटता है और पूर्ण स्वाधीनता भी प्राप्त होती है। जो सर्वोच्च नियमको माननेवाले हैं, उन्हें किसी मनुष्यके बनाये हुए कानूनको माननेकी जरूरत नहीं। वे शान्तिपूर्वक मनुष्यके पशुबलको शिर झुकाकर सह लेते हैं, परन्तु ऐसे किसी कानूनको नहीं मानते जो प्रधान नियमके विरुद्ध है।

सच्चे धार्मिक मनुष्य प्रधान नियमको मानते हुए कानूनोंको माननेसे इनकार कर देंगे। वे सब तरहके कष्ट सहेंगे, परन्तु एक ईश्वरकी आज्ञा मानेंगे और स्वतन्त्र रहेंगे। सरकारोंने बड़ी चालाकीसे लोगोंको अपने वशमें किया है। उन्होंने पहले पहल पशुबलकी इसलिये दुहाई दी कि दीन-दुखियोंकी रक्षा आवश्यक है। न्यायपूर्वक बदला लिया जा सकता है। जब लोगोंने उनके सिद्धान्तको मान लिया तो दिनपर दिन वे अपनी शक्ति बढ़ाती चली गयीं। लोगोंसे शपथ ली गयी कि वे सरकारोंकी आज्ञाएं हर हालतमें मानेंगे तब वे पशुबल और हत्याको निषिद्ध ही न समझने लगे। वे बुराईको चुपचाप सहनेके लिये तैयार न हुए, क्योंकि उन्हें यह रुख बड़ा अपमानजनक दिखाई दिया। वे सरकारोंकी आज्ञा मानना आवश्यक समझ गुलाम बनते चले गये। इस तरह प्राचीन प्रणालीके दास बनकर मनुष्य अपनी गुलामीके लिये लज्जित न हुए और अपनी सरकारोंकी

शक्तिका उल्टा अभिमान करने लगे जिस तरह गुलाम हमेशा ही अपने स्वामियोंके महत्वका अभिमान किया करते हैं।

सरकारोंने एक चाल नयी निकाली है। वे कहती हैं कि जो लोग हमारी आज्ञा मानते हैं वे अपनी ही आज्ञाका तो पालन करते हैं, क्योंकि सरकारें तो चुने हुए आदमियोंके झुण्डसे बनती हैं। जो लोग अपनेको हमारा दास समझते हैं, वे वास्तवमें स्वतन्त्र हैं। जिस देशमें अधिकसे अधिक प्रजातन्त्र शासन स्थापित है वहां भी जनता अपना मत प्रकट करनेमें असमर्थ है, क्योंकि लाखों आदमियोंकी राय क्या हो सकती है। इसके सिवा यदि ऐसा कोई मत हो भी तो वह बहुमतसे कम होनेके कारण प्रकट नहीं किया जा सकता। जनता स्वयं नहीं जान सकती कि वह क्या चाहती है। इसके सिवा जो प्रतिनिधि कानून बनाते हैं वे जनताके हितको ध्यानमें रखकर कानून नहीं बनाते, बल्कि इस दृष्टिसे कानून बनाते हैं कि दलबन्दियोंकी धूममे वे अपना पद कायम रख सकें। जनता स्वेच्छासे जो गुलामी स्वीकार करती है, वह और भी अधिक हानिकारक है। धोखेबाजीमें पड़कर जनता और भी पतित बनती है। धोखेमें पड़नेवाले समझते हैं कि हम अपनी आज्ञाओंका ही पालन कर रहे हैं और इस तरह उन कानूनोंको भी मानते हैं जो उनकी रुचि और कल्याणके ही नहीं, अन्त करण और ईश्वरीय नियमके भी विपरीत हैं। असल बात तो यह है कि जो अपनेको प्रजातन्त्र शासनके अधीन समझते हैं, वे उसी तरह अपनी इच्छाके अनुकूल काम

नहीं कर सकते जिस तरह निरंकुश शासनमें रहनेवाले नहीं कर सकते। यदि किसी जेलके कैदी जेलके शासनके लिये जेलरोंके निर्वाचनके वास्ते अपनी राय देने लग जायें, तो क्या वे कह सकते हैं कि हम स्वतन्त्र हैं? आखिरको वे जेलमें ही तो हैं।

किसी निरंकुश सरकारकी प्रजा बिल्कुल स्वतन्त्र हो सकती है चाहे वह उन अधिकारियोंके पशुबलके अधीन भी हो जो उसने स्वयं नियुक्त नहीं किये, लेकिन प्रतिनिधि सरकारका मनुष्य सदा गुलाम है क्योंकि वह उस पशुबलको स्वीकार किये हुए है, जो उसपर काममें लाया जाता है। वह समझता है कि हम अपनी सरकारमें भाग ले सकते हैं इसीसे सरकारकी सभी आज्ञाएं मानता है। वह इस धोखेमें पड़कर असली स्वतन्त्रताका अर्थ ही भूल जाता है। इस प्रकारके लोग यद्यपि समझते हैं कि हम अधिकाधिक स्वतन्त्र हो रहे हैं, परन्तु वे वास्तवमें सरकारोंके गुलाम बन रहे हैं। जो साम्यवाद मनुष्यको और भी अधिक गुलामीकी ओर ले जानेवाला है, उसका अधिक प्रचार और सफलता देखकर ऊपरकी कल्पना मिथ्या नहीं रहती।

इस तरह किसी बुरी बातसे असहयोग न करनेके कारण स्वाधीनताका और भी अधिक नाश होता चला गया है। बुराईमें भाग लेनेसे बुराई और ज्यादा बढ़ती चली गयी है।

(६)

भावी क्रान्तिका साधारण कारण यह है कि संसार अनुभव कर रहा है कि बुराईसे असहयोग न करनेके कारण गुलाम?

बढ रही है। सैनिक साधन बढ़ते जा रहे हैं और जनता जमीनसे वञ्चित होकर अधिक कष्टमें पडती जा रही है।

जनताका जमीनसे वञ्चित हो जाना भावी क्रान्तिका दूसरा बाह्य कारण है। जमीनके अभावसे लोग विशेष निर्धन और दुःखी बन गये हैं। वे उन लोगोंके प्रति अधिक क्रुद्ध हो रहे हैं, जो उनके परिश्रमसे लाभ उठा रहे हैं। किसान इस परिणामपर पहुचे हैं कि या तो वे अपना प्राचीन कृषिजीवन सदाके लिये *त्याग दें जो उन्हें वास्तविक स्वतन्त्रता प्रदान कर सकता है या* सरकारकी आज्ञा मानना बन्द कर दें जो उनसे जमीन छिनाकर जमींदारोंके अधिकारमें कर रही है।

आम तौरसे यह बात कही जाती है कि किसी दूसरे मनुष्यका गुलाम होना बडी भयानक बात है, क्योंकि गुलामको जो चाहे वही दण्ड दे सकता और उसके प्राण ले सकता है। किसीको जमीनसे वञ्चित करनेके कार्यको हम गुलामी न कहकर अन्याय-पूर्ण आर्थिक बुराई बताते हैं। यह मत बिल्कुल ही मिथ्यापूर्ण है। जमीनसे किसीको वञ्चित करना उसे मानो भयानक गुला-मीमें डालना है। आदमी यदि किसीका गुलाम होता है तो उसे एककी ही गुलामी करनी पडती है, परन्तु जमीनसे वञ्चित मनुष्य सबका ही गुलाम है। गुलामोंके स्वामी अपने सेवकसे कभी इतना काम नहीं लेते थे कि वह दुःखी हो जाये, वे उसे सताते भी न थे और न भूखों ही मारते थे। जमीनसे वञ्चित हो जानेवाला व्यक्ति सदा ही अपनी शक्तिसे अधिक काम करता है,

वह भूखों भी मरता है और एक मिनटके लिये भी लालची आदमियोंके चंगुलसे छूटकर स्वतन्त्रता नहीं भोग सकता। उसका कष्ट इतना ही नहीं है, सबसे भयङ्कर बात तो यह है कि वह नैतिक जीवन ही व्यतीत नहीं कर सकता। जब उसे जमीनपर कुछ काम करने और प्रकृतिसे युद्ध करनेका मौका ही नहीं मिलता, तब वह उन आदमियोंसे युद्ध करनेके लिये बाध्य होता है जो धोखेसे दूसरोंके परिश्रम या जमीनसे लाभ उठा रहे हैं।

जमीनकी गुलामी पुरानी गुलामीका बचा हुआ अङ्ग नहीं, बल्कि प्रधान गुलामी है। इस गुलामीसे तरह तरहकी गुलामी पैदा होती है और वह व्यक्तिगत गुलामीसे कहीं भयानक है। व्यक्तिगत गुलामीसे मुक्त हो जानेपर भी जो जमीनकी गुलामीसे मुक्त नहीं होता, वह स्वतन्त्र नहीं माना जा सकता। लोग जिस समय गुलाम बनाये जाते थे, उस समय भी अपनी आवश्यकताके अनुकूल जमीन काममें ला सकते थे। सरकार और जमींदार बढ़ती हुई जनसंख्याको अलग अलग जमीन दे दिया करते थे, इसलिये जमीनपर रहनेवाले व्यक्तिविशेषोंके अन्यायपूर्ण अधिकारका किसीको ज्ञान न होता था। जब गुलामी दूर हो गयी तब सरकारों और जमींदारोंको गरीबोंके हितकी बात तो अलग रही, प्राणरक्षाकी भी चिन्ता न रही। लोगोंको जितनी जमीन दी गयी थी वह जरा भी न बढ़ायी गयी यद्यपि जनता बढ़ती चली गयी।

लोगोंको इस तरह जीवन व्यतीत करना असम्भव दिखाई

दिया। वे इस प्रतीक्षामें रहे कि सरकार उन कानूनोंको उठा देगी जो उन्हें जमीनसे वञ्चित रखते हैं। उन्होंने दस, बीस, तीस वर्षतक राह देखी; परन्तु जमीन बराबर ही जमींदारोंके हाथमें पहुंचती गयी। लोगोंके सामने दो मार्ग रह गये। या तो वे अपना कृषिजीवन त्याग देते या भूखों मरते। आधी शताब्दी व्यतीत हो गयी और उनकी स्थिति दिनपर दिन बिगड़ती चली गयी। सरकारोंने उन्हें जमीन न देकर अपने पिट्ठुओंको दी। लोगोंसे कहा गया कि जमीन न मिलेगी। उनका जीवन-क्रम नये ढङ्गसे शिल्पके आधारपर निश्चित किया गया।

जनताके कष्टका असली कारण जमीनका हाथसे निकल जाना है। श्रमजीवी जमीनसे वञ्चित होकर ही असन्तुष्ट हुए हैं। जमीन व्यक्तिविशेषोंकी सम्पत्ति मान ली गयी है। लोग इस अन्यायका पता नहीं पाते, क्योंकि वे अपनी दुखी अवस्थाका कारण कभी बाजारोंकी कमी, कभी चुङ्गी, कभी अनुचित कर और कभी पैसेवालोंकी ज्यादती समझते हैं, परन्तु यह नहीं समझ पाते कि हमारा स्वाभाविक अधिकार जो जमीनपर था, हमसे छीन लिया गया है और हमारे कष्ट बढ़ा रहा है।

अस्त्र-शस्त्रोंकी भयानक वृद्धि, लड़ाइयां और जमीनका छीन लेना भावी क्रान्तिका कारण बन रहा है। रूस आदि देशोंमें यह क्रान्ति विशेष रूपसे अपने चिन्ह प्रकट कर रही है जहांपर कृषिजीवन बितानेवाले अधिक हैं।

खों भी मरता है और एक मिनटके लिये भी लालची आद-
के चंगुलसे छूटकर स्वतन्त्रता नहीं भोग सकता। उसका
इतना ही नहीं है, सबसे भयङ्कर बात तो यह है कि वह
क जीवन ही व्यतीत नहीं कर सकता। जब उसे जमीनपर
काम करने और प्रकृतिसे युद्ध करनेका मौका ही नहीं मिलता,
वह उन आदमियोंसे युद्ध करनेके लिये बाध्य होता है जो
से दूसरोंके परिश्रम या जमीनसे लाभ उठा रहे हैं।
जमीनकी गुलामी पुरानी गुलामीका बचा हुआ अङ्ग नहीं,
क प्रधान गुलामी है। इस गुलामीसे तरह तरहकी गुलामी पैदा
ी है और वह व्यक्तिगत गुलामीसे कहीं भयानक है। व्यक्ति-
गुलामीसे मुक्त हो जानेपर भी जो जमीनकी गुलामीसे मुक्त
ं होता, वह स्वतन्त्र नहीं माना जा सकता। लोग जिस
य गुलाम बनाये जाते थे, उस समय भी अपनी आवश्यकता-
अनुकूल जमीन काममें ला सकते थे। सरकार और जमीं-
र बढ़ती हुई जनसंख्याको अलग अलग जमीन दे दिया करते
, इसलिये जमीनपर रहनेवाले व्यक्तिविशेषोंके अन्यायपूर्ण
धिकारका किसीको ज्ञान न होता था। जब गुलामी दूर हो
यी तब सरकारों और जमींदारोंको गरीबोंके हितकी बात तो
लग रही, प्राणरक्षाकी भी चिन्ता न रही। लोगोंको जितनी
मीन दी गयी थी वह जरा भी न बढ़ायी गयी यद्यपि जनता
ढ़ती चली गयी।

लोगोंको इस तरह जीवन व्यतीत करना असम्भव दिखाई

दिया। वे इस प्रतीक्षामें रहे कि सरकार उन कानूनोंको उठा देगी जो उन्हें जमीनसे वञ्चित रखते हैं। उन्होंने दस, बीस, तीस वर्षतक राह देखी; परन्तु जमीन बराबर ही जमींदारोंके हाथमें पहुंचती गयी। लोगोंके सामने दो मार्ग रह गये। या तो वे अपना कृषिजीवन त्याग देते या भूखों मरते। आधी शताब्दी व्यतीत हो गयी और उनकी स्थिति दिनपर दिन बिगड़ती चली गयी। सरकारोंने उन्हें जमीन न देकर अपने पिट्ठुओंको दी। लोगोंसे कहा गया कि जमीन न मिलेगी। उनका जीवन-क्रम नये ढङ्गसे शिल्पके आधारपर निश्चित किया गया।

जनताके कष्टका असली कारण जमीनका हाथसे निकल जाना है। श्रमजीवी जमीनसे वञ्चित होकर ही असन्तुष्ट हुए हैं। जमीन व्यक्तिविशेषोंकी सम्पत्ति मान ली गयी है। लोग इस अन्यायका पता नहीं पाते, क्योंकि वे अपनी दुखी अवस्थाका कारण कभी बाजारोंकी कमी, कभी चुङ्गी, कभी अनुचित कर और कभी पैसेवालोंकी ज्यादती समझते हैं, परन्तु यह नहीं समझ पाते कि हमारा स्वाभाविक अधिकार जो जमीनपर था, हमसे छीन लिया गया है और हमारे कष्ट बढ़ा रहा है।

अस्त्र-शस्त्रोंकी भयानक वृद्धि, लड़ाइयां और जमीनका छीन लेना भावी क्रान्तिका कारण बन रहा है। रूस आदि देशोंमें यह क्रान्ति विशेष रूपसे अपने चिन्ह प्रकट कर रही है जहांपर [illegible]न बितानेवाले अधिक हैं।

वह भूखों भी मरता है और एक मिनटके लिये भी लालची आदमियोंके चंगुलसे छूटकर स्वतन्त्रता नहीं भोग सकता। उसका कष्ट इतना ही नहीं हैं, सबसे भयङ्कर बात तो यह है कि वह नैतिक जीवन ही व्यतीत नहीं कर सकता। जब उसे जमीनपर कुछ काम करने और प्रकृतिसे युद्ध करनेका मौका ही नहीं मिलता, तब वह उन आदमियोंसे युद्ध करनेके लिये वाध्य होता है जो धोखेसे दूसरोंके परिश्रम या जमीनसे लाभ उठा रहे हैं।

जमीनकी गुलामी पुरानी गुलामीका बचा हुआ अङ्ग नहीं, बल्कि प्रधान गुलामी है। इस गुलामीसे तरह तरहकी गुलामी पैदा होती है और वह व्यक्तिगत गुलामीसे कहीं भयानक है। व्यक्तिगत गुलामीसे मुक्त हो जानेपर भी जो जमीनकी गुलामीसे मुक्त नहीं होता, वह स्वतन्त्र नहीं माना जा सकता। लोग जिस समय गुलाम बनाये जाते थे, उस समय भी अपनी आवश्यकताके अनुकूल जमीन काममें ला सकते थे। सरकार और जमींदार बढ़ती हुई जनसंख्याको अलग अलग जमीन दे दिया करते थे, इसलिये जमीनपर रहनेवाले व्यक्तिविशेषोंके अन्यायपूर्ण अधिकारका किसीको ज्ञान न होता था। जब गुलामी दूर हो गयी तब सरकारों और जमींदारोंको गरीबोंके हितकी बात तो अलग रही, प्राणरक्षाकी भी चिन्ता न रही। लोगोंको जितनी जमीन दी गयी थी वह जरा भी न बढ़ायी गयी यद्यपि जनता बढ़ती चली गयी।

लोगोंको इस तरह जीवन व्यतीत करना असम्भव दिखाई,

मानुषिक शासनके जालसे स्वतन्त्रता प्राप्त करना है। प्राचीन क्रान्तियोंका उद्देश्य नवीन क्रान्तिसे भिन्न था, इसलिये जो साधन पहले काममें लाये गये वे भी वर्तमान साधनोंसे भिन्न होने चाहिये। पहले पशुबलसे पशुबलका सामना किया जाता था, अब उस पशुबलसे हाथ खींचकर उद्देश्य प्राप्त करना होगा। सरकारोंके बिना जीवन-क्रम निश्चित करना होगा। प्राचीन क्रान्तियोंकी अपेक्षा नयी क्रान्तिमें भाग लेनेवाले भिन्न श्रेणीके हैं और उनकी संख्या भी अधिक है।

प्राचीन क्रान्तियोंमें उच्च श्रेणीके लोगोंने भाग लिया जो शारीरिक परिश्रम नहीं करते थे। नवीन क्रान्तिमें भाग लेनेवाले अधिकांश कृषक और श्रमजीवी होंगे। पहले क्रान्ति बड़े बड़े शहरोंमें हुई थी, अब ग्रामोंमें होगी। पहले समस्त जनसंख्यामेंसे १० या २० सैकड़ा आदमी ही क्रान्तिमें भाग लेनेवाले थे, परन्तु अब ८० या ९० सैकड़ा आदमी भाग लेंगे।

जो लोग इस समय क्रान्तिमें भाग लेनेके लिये हड़तालों, सभासमितियों, जुलूसों और यूनियनोंकी धूम मचाते हैं तथा नरहत्या करनेको तैयार हैं, वे क्रान्तिमें बाधा पहुंचानेवाले और सरकारोंके मददगार हैं। इसलिये इस बातका बड़ा ध्यान रखना [illegible] सुधारका सच्चा मार्ग छोड़कर भ्रममें न पड़ [illegible]ोंकी अधीन न कर इस समय [illegible] दूसरोंके निश्चित कार्यक्रमको [illegible]ने ही अन्तःकरणसे उपदेश

प्राचीन कालमें मनुष्योंकी वलि हुआ करती थी, धार्मिक युद्ध छिड़ा करते थे तथा और भी अन्य प्रकारका अन्धविश्वास था, परन्तु वह सव अव दिखाई नहीं देता। सरकारोंके सम्वन्धमें ही अन्धविश्वास बाकी रह गया है। इस अन्धविश्वासके कारण इतनी नरवलि होती है, जितनी पहले कभी नहीं हुई थी। सरकारोंके सम्बन्धमें यह अन्धविश्वास बना हुआ है कि भिन्न स्थानों, जातियों और धर्मों तथा आदतोंके मनुष्य एक ही हैं, क्योंकि सवपर पशुवलका प्रयोग किया जाता है। सव लोग इस बातको मानकर इस बातका अभिमान किया करते हैं कि वे एक ही सङ्गठनमें भाग लेनेवाले हैं। जो लोग सङ्गठनसे लाभ उठाते हैं वही ऐसा विश्वास नहीं रखते, वल्कि वे लोग भी इसी मतको माननेवाले हैं जो इस सङ्गठनके कारण हानि उठानेवाले हैं।

यदि लोग इन सरकारी सङ्गठनोंके अधीन रहना त्याग दें, तो मनुष्योंके कष्ट कम हो जायें और लोग पारस्परिक सहायता-के उच्च सिद्धान्तपर अपना जीवन व्यतीत करने लग जायें। जनताको इस समय पुराने विचारों या पुराने अनुभवके आधारपर अपना जीवन व्यतीत न कर स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना चाहिये, स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना चाहिये। अपने आध्यात्मिक भण्डारसे जीवनका नया क्रम निश्चित करना चाहिये।

(८)

मनुष्योंपर जो नयी क्रान्ति आनेवाली है, उसका उद्देश्य

मानुषिक शासनके जालसे स्वतन्त्रता प्राप्त करना है। प्राचीन क्रान्तियोंका उद्देश्य नवीन क्रान्तिसे भिन्न था, इसलिये जो साधन पहले काममें लाये गये वे भी वर्तमान साधनोंसे भिन्न होने चाहिये। पहले पशुबलसे पशुबलका सामना किया जाता था, अब उस पशुबलसे हाथ खींचकर उद्देश्य प्राप्त करना होगा। सरकारोंके बिना जीवन-क्रम निश्चित करना होगा। प्राचीन क्रान्तियोंकी अपेक्षा नयी क्रान्तिमें भाग लेनेवाले भिन्न श्रेणीके हैं और उनकी संख्या भी अधिक है।

प्राचीन क्रान्तियोंमें उच्च श्रेणीके लोगोंने भाग लिया जो शारीरिक परिश्रम नहीं करते थे। नवीन क्रान्तिमें भाग लेनेवाले अधिकांश कृषक और श्रमजीवी होंगे। पहले क्रान्ति बड़े बड़े शहरोंमें हुई थी, अब ग्रामोंमें होगी। पहले समस्त जनसंख्यामेंसे १० या २० सैकड़ा आदमी ही क्रान्तिमें भाग लेनेवाले थे, परन्तु अब ८० या ६० सैकड़ा आदमी भाग लेंगे।

जो लोग इस समय क्रान्तिमें भाग लेनेके लिये हड़तालों, सभासमितियों, जुलूसों और यूनियनोंकी धूम मचाते हैं तथा नरहत्या करनेको तैयार हैं, वे क्रान्तिमें बाधा पहुचानेवाले और सरकारोंके मददगार हैं। इसलिये इस बातका बड़ा ध्यान रखना है कि लोग उद्धारका सच्चा मार्ग छोड़कर भ्रममें न पड़ जायें। लोगोंको दूसरोंकी छानबीन न कर इस समय आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिये। दूसरोंके निश्चित कार्यक्रमको भी न मानना चाहिये। वे केवल अपने ही अन्तःकरणसे उपदेश

प्राचीन कालमें मनुष्योंको वलि हुआ करती थी, धार्मिक युद्ध छिड़ा करते थे तथा और भी अन्य प्रकारका अन्धविश्वास था, परन्तु वह सब अब दिखाई नहीं देता। सरकारोंके सम्बन्धमें ही अन्धविश्वास वाकी रह गया है। इस अन्धविश्वासके कारण इतनी नरवलि होती है, जितनी पहले कभी नहीं हुई थी। सरकारोंके सम्बन्धमें यह अन्धविश्वास वना हुआ है कि भिन्न स्थानों, जातियों और धर्मों तथा आदतोंके मनुष्य एक ही हैं, क्योंकि सबपर पशुवलका प्रयोग किया जाता है। सब लोग इस वातको मानकर इस बातका अभिमान किया करते हैं कि वे एक ही सङ्गठनमें भाग लेनेवाले हैं। जो लोग सङ्गठनसे लाभ उठाते हैं वही ऐसा विश्वास नहीं रखते, वल्कि वे लोग भी इसी मतको माननेवाले हैं जो इस सङ्गठनके कारण हानि उठानेवाले हैं।

यदि लोग इन सरकारी सङ्गठनोंके अधीन रहना त्याग दें, तो मनुष्योंके कष्ट कम हो जायें और लोग पारस्परिक सहायताके उच्च सिद्धान्तपर अपना जीवन व्यतीत करने लग जायें। जनताको इस समय पुराने विचारों या पुराने अनुभवके आधारपर अपना जीवन व्यतीत न कर स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना चाहिये, स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना चाहिये। अपने आध्यात्मिक भण्डारसे जीवनका नया क्रम निश्चित करना चाहिये।

(८)

मनुष्योंपर जो नयी क्रान्ति आनेवाली है, उसका उद्देश्य

मानुषिक शासनके जालसे स्वतन्त्रता प्राप्त करना है। प्राचीन क्रान्तियोंका उद्देश्य नवीन क्रान्तिसे भिन्न था, इसलिये जो साधन पहले काममें लाये गये वे भी वर्तमान साधनोंसे भिन्न होने चाहिये। पहले पशुबलसे पशुबलका सामना किया जाता था, अब उस पशुबलसे हाथ खींचकर उद्देश्य प्राप्त करना होगा। सरकारोंके बिना जीवन-क्रम निश्चित करना होगा। प्राचीन क्रान्तियोंकी अपेक्षा नयी क्रान्तिमें भाग लेनेवाले भिन्न श्रेणीके हैं और उनकी संख्या भी अधिक है।

प्राचीन क्रान्तियोंमें उच्च श्रेणीके लोगोंने भाग लिया जो शारीरिक परिश्रम नहीं करते थे। नवीन क्रान्तिमें भाग लेनेवाले अधिकांश कृषक और श्रमजीवी होंगे। पहले क्रान्ति बड़े बड़े शहरोंमें हुई थी, अब ग्रामोंमें होगी। पहले समस्त जनसंख्यामेंसे १० या २० सैकड़ा आदमी ही क्रान्तिमें भाग लेनेवाले थे, परन्तु अब ८० या ६० सैकड़ा आदमी भाग लेंगे।

जो लोग इस समय क्रान्तिमें भाग लेनेके लिये हड़तालों, सभासमितियों, जुलूसों और यूनियनोंकी धूम मचाते हैं तथा नरहत्या करनेको तैयार हैं, वे क्रान्तिमें बाधा पहुंचानेवाले और सरकारोंके मददगार हैं। इसलिये इस बातका बड़ा ध्यान रखना है कि लोग उद्धारका सच्चा मार्ग छोड़कर भ्रममें न पड़ जायें। लोगोंको दूसरोंकी छानबीन न कर इस समय आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिये। दूसरोंके निश्चित कार्यक्रमको भी न मानना चाहिये। वे केवल अपने ही अन्तःकरणसे उपदेश

चाहते हैं। वे पशुबलकी प्राप्तिके लिये जोर-जुल्म काममें लाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि जनता इतना काम कर चुकनेपर भी अभीकी तरह सैनिक अत्याचार, कर-सम्बन्धी अत्याचार और जमीनसे वञ्चित होनेके अत्याचारसे पीड़ित बनी रहे।

जो क्रान्तिमें पशुबलसे भाग लेना चाहते हैं, वे ऐसा सङ्गठन तैयार करनेकी दुहाई देते हैं जो जनताकी बची हुई स्वतन्त्रता भी छीन लेगा। इससे स्पष्ट है कि उद्योग करनेवाले कोई नया आदर्श नहीं रखते। हमारे युगका आदर्श एक प्रणाली-की जगह दूसरी नहीं, बल्कि उस प्रणालीका अन्त ही होना चाहिये जो मानुषिक शक्तिकी अधीनी न माननेसे उपस्थित हो जायेगा।

निर्धन जनता अपने कष्टोंका बोझ अपने शिरपरसे यदि उतार देना चाहती है, तो मनुष्योंकी आज्ञा माननी बन्द कर दे। शारीरिक और आत्मिक कल्याण एक ही उपायसे प्राप्त हो सकता है—चुपचाप पशुबलको सहने, उसमें भाग न लेने और अधि-कारियोंकी आज्ञा न माननेसे काम चलेगा। शहरवाले यदि वास्तवमें अपने भाइयोंका हितसाधन करना चाहते हैं, तो गांवोंमें बसकर अपने भाइयोंके शारीरिक परिश्रममें भाग लें। वे लोगोंके धैर्य और परिश्रमको सीखें। उन्हें मारकाटके लिये उत्तेजित न करें जैसे कि अभी कर रहे हैं; बल्कि उन्हें यह सलाह दें कि वे पशुबलमें किसी तरह भाग न लें, किसी तरहकी

मानुषिक शक्ति न मानें, सरकारोंके नाश होनेपर जो प्रश्न उपस्थित होंगे, उन्हें हल करें ।

(६)

यदि किसीको पुराने गिरते हुए मकानकी जगहपर नया मकान खड़ा करना है, तो उसे पुराने मकानकी दीवालकी एक एक ईंट और पत्थर उखाड़ फेंकना होगा और फिर नया मकान बनाना होगा ।

जो लोग क्रान्तिके बाद भी सङ्गठन आवश्यक समझते हों, वे पहले सरकारोंके सङ्गठनका बिल्कुल नाश कर दें और ऐसा सङ्गठन खड़ा करें, जो परस्परकी सहायताके आधारपर अवलम्बित हो ।

बहुतसे लोग कहेंगे कि सरकारोंके न रहनेसे यह सभ्यता तो न रह सकेगी जो वर्षोंके उद्योगसे कायम हुई है। जो लोग इस सभ्यताकी रक्षाके लिये चिन्तित हैं, वे शहरोंके कुछ राजा, बादशाह, गवर्नर, व्यापारी, जमींदार, लेखक और धर्माचार्य हो सकते हैं। संसारके मनुष्योंका केवल दसवा भाग इस सभ्यता-का हिमायती है। बाकी आदमी सभ्यताकी जरा भी परवा न कर केवल जमीन, वर्षा, खाद, नहरें, जङ्गल और खेतीके कुछ अस्त्र चाहते हैं। वे जब सभ्यताको—शहरोंके अन्यायपूर्ण न्याया-लयों और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले जेलखानों, ऊंचे परन्तु अनावश्यक महलों, रङ्गभवनों, चीजोंके गमनागमनमें बाधा पहुं-

ज़्यादा है। वर्तमान समाजमें थोड़े आदमी ज़्यादा आदमियोंको दबाये हुए हैं इसलिये सभ्यता बुरी है। शासन करनेवालोंको अत्याचार करनेके लिये वह एक और अधिक अस्त्र प्राप्त है।

उच्च श्रेणीके मनुष्योंको अब समझ लेना चाहिये कि जिसे वे सभ्यता कहते हैं वह उस गुलामीका कारण और फल है, जिसमें अधिकांश श्रमजीवी फंसे रहते हैं।

हमारा उद्धार पुराने मार्गपर चलनेसे न होगा। हमें यह बात स्वीकार करनी होगी कि हम ठीक रास्तेपर नहीं चले। हम ऐसे दलदलमें भी फंस गये हैं कि उससे निकलना जरूरी है। हमें उन अनावश्यक वस्तुओंको अपने ऊपरसे दूर फेंककर किसी तरह मजबूत चट्टानपर पहुंच जाना चाहिये।

बुद्धिमत्तापूर्ण और उत्तम जीवन मनुष्योंके लिये वही होगा जो बुद्धिमत्तापूर्ण और उत्तम कार्य करनेमें व्यतीत किया जाये। मनुष्योंके सामने इस समय दो मार्ग हैं। या तो वे उस सभ्यताको जारी रखें जो कुछ थोड़ेसे आदमियोंको लाभ पहुंचानेवाली और अधिकांशको कष्टमें रखनेवाली है या बिना विलम्ब सभ्यताके उन लाभोंको त्याग दें जो अधिकांशको गुलामीसे छुटकारा नहीं पाने देते।

(१०)

आजकलके लोग कहते हैं कि हमें लिखने, बोलने और एकत्र होनेकी स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिये। इसका यह अर्थ है कि वे स्वतन्त्रताके उस सरल रूपसे परिचित नहीं, जिसके कारण

एक मनुष्यको दूसरे मनुष्यकी आज्ञाका पालन ही अपनी इच्छाके विरुद्ध नहीं करना पड़ता।

भयानक भूल यही हो रही है कि लोग स्वतन्त्रताके सीधे-सादे रूपको ही नहीं समझते और स्वतन्त्रताके नामपर दूसरोंसे कुछ अधिकार मांगते हैं। इस भूलका यह कारण है कि लोग समझते हैं कि पशुबलप्रधान सरकारोंके प्रति वर्तमान भक्ति प्रकट करना स्वाभाविक है और उनसे जो कुछ प्राप्त हो जाये, उसीका नाम आजादी है। इसका यह अर्थ है कि यदि किसी गुलामको किसी दिन बाजार या देवमन्दिरमें जानेकी स्वतन्त्रता मिल जाये, तो वह कहने लगे कि मुझे स्वतन्त्रता प्राप्त हो गयी। क्या इस प्रकारकी आज्ञा पा लेनेसे गुलाम अपनेको स्वतन्त्र मानने लगेगा?

लोगोंको एक क्षणके लिये पुराने जमानेसे जारी रीतिरिवाज और अन्धविश्वासको ताकपर उठाकर रख देना चाहिये और फिर अपनी अवस्थापर विचार करना चाहिये। चाहे निरंकुश सरकारकी मातहतीमें रहनेवाला व्यक्ति हो या प्रजातन्त्र सरकार-का आदमी हो, वह उस भयङ्कर गुलामीका अनुभव करने लगेगा जिसमें आजकल रह रहा है।

प्रत्येक व्यक्तिके ऊपर कुछ व्यक्तियोंका दल रहता है जिनसे वह परिचित नहीं होता। वह चाहे जहां उत्पन्न हुआ हो, यही दल उसका जीवन-क्रम निश्चित करता है। कानून बने हुए हैं कि कोई व्यक्ति किस तरह और कब विवाह करे, कब

अपनी स्त्रीका परित्याग कर सकता है, किस तरह वह अपने बच्चोंका पालन कर सकता है, किन बच्चोंको वह कानूनी और किन्हें गैरकानूनी समझे, किसकी सम्पत्तिका वह किस तरह अधिकारी बन सकता है, अदालतोंमें किस तरह हाजिर हो सकता है, किस तरहके आदमियोंसे कितने घण्टे हर रोज़ काम लेकर उन्हें क्या खानेको दे सकता है, अपने बच्चोंको रोगसे बचानेके लिये वह उनके कब टीका लगवाये, अपने बच्चोंको कहां पढ़नेके लिये भेजे, किस तरहका मकान बनवाये, किस तरह पानी काममें लाये इत्यादि। इन सब कानूनोंको न माननेसे दण्डकी भी व्यवस्था है। इतने कानून सब कोई जान नहीं सकता, परन्तु उनका न जानना, निर्दोषितामें शामिल नहीं। जो उन्हें भङ्ग करनेवाला दिखाई देगा, उसे दण्ड मिलेगा। जो कोई आदमी खानेपीनेका जरूरी सामान खरीदेगा, उसे उस सामानके लिये कुछ अधिक मूल्य देना होगा जो ऐसे कामोंमें व्यय किया जायेगा जिसका उसे पता भी न हो। किसी दलने यदि उसके पितामह या प्रपितामहके समय किसीसे कर्ज लिया होगा, तो उस कर्जको अदा करनेके लिये उसे अपने परिश्रमके फलका कुछ अंश देना होगा। यही नहीं, यदि वह जमीन जोत बोकर अपना निर्वाह करना चाहेगा, तो उसे अपनी मिहनतका बहुतसा भाग दूसरोंके हवाले करना होगा। वह अपनी अवस्था न सुधार सकेगा, परन्तु उसे हर तरहके कर जरूर ही चुकाने होंगे।

कुछ देशोंमें तो इससे भी अधिक गुलामी है। किसी निश्चित

अवस्थामें प्रत्येक युवकको अपना घरद्वार, परिवार त्यागकर सेनामें अवश्य ही भर्ती होना पड़ेगा और समय आनेपर लड़ाईमें भी अपनी इच्छाके विरुद्ध जाना होगा। कुछ देशोंमें दूसरे आदमी भी लड़नेके लिये किराया चुकाकर भेजने होंगे। इसपर भी मजा यह है कि लोग अभिमान करते हैं कि हम अमुक देशके स्वतन्त्र नागरिक हैं। ये लोग अपनी सरकारोंके उसी तरह अभिमानी हैं जिस तरह कोई साईस या कोचवान या पालकी ले जानेवाला अपने स्वामीके बड़प्पनका अभिमान करनेवाला हो।

जिस मनुष्यका आत्मिक पतन नहीं हुआ, वह अपनेको इस घृणित गुलामीमें पाकर अवश्य ही कहेगा कि मैं अपनी इच्छाके अनुकूल उत्तम जीवन व्यतीत करना चाहता हूं। मैं अपने आप इस बातका निश्चय करूंगा कि मेरे लिये उत्तम जीवन क्या है। मुझे इन सरकारोंकी कुछ भी परवा नहीं। जबर्दस्ती मुझसे जो चाहे छीन ले जाये, मुझे मार भी डाले, परन्तु स्वेच्छासे मैं कभी इस गुलामीमें भाग नहीं ले सकता। ऐसा करना स्वाभाविक भी होगा, परन्तु आश्चर्य है कि इस तरह कोई काम नहीं करता।

किसी न किसी सरकारकी मातहतीमें रहनेका भाव इस दृढ़ताके साथ मनुष्योंके हृदयमें स्थान पा गया है कि लोग अपनी बुद्धि या अन्तःकरणके अनुकूल काम ही नहीं कर सकते। वे अपने लाभका ध्यान रखकर कोई काम नहीं कर सकते। इस भावके कारण ही लोग गुलामीसे छुटकारा नहीं पाते और उन

चिड़ियोंकी अवस्थामें हैं, जो पिंजड़ेका द्वार खुला रहनेपर भी उनके भीतरसे वाहर नहीं आतीं। वे या तो अपनी आदतके कारण भीतर बैठी रहती हैं या यह समझती हैं कि आजाद नहीं। लोगोंकी यह भयानक भूल उन देशोंमें विशेष उल्लेखनीय है, जहांपर कृषिजीवन व्यतीत करनेका पूरा सुभीता है—जैसे कि जर्मनी, भारत और रूस आदि हैं। इन देशोंके लोगोंको तो स्वेच्छासे गुलाम बने रहनेमें कोई लाभ ही नहीं।

शहरके लोगोंका हित तो शासकोंके हितसे जुड़ा हुआ है, इसलिये वे तो गुलामीमें अवश्य ही रहेंगे। धनकुबेर राकफेलर भला कानून क्यों न मानें, जब कि कानूनोंकी सहायतासे ही वे अरबों रुपया पा रहे हैं और उन्हें सुरक्षित समझते हैं। उनके कारखानोंके सञ्चालक, उन सञ्चालकोंके नौकर और इन नौकरोंके नौकर ही कानून माने विना नहीं रह सकते। शहरके अधिकांश लोगोंका यही हाल है। ये लोग किसानोंकी गुलामीसे लाभ उठा रहे हैं, फिर सरकारोंके कानूनोंसे किसानोंको गुलामीके फन्देमें रखनेका समर्थन क्यों न करें।

कृषिजीवन व्यतीत करनेवाले परिवारोंका सरकारी गुलामीसे क्या लाभ है जो वे अपनी कमाई और आदमी सरकारोंके हवाले करें? वे क्यों ऐसे कानून मानें जो उन्होंने नहीं, दूसरोंने बनाये हैं? उनसे यदि यह कहा जाता है कि वे ऐसा करते हुए अपने ही कानून मान रहे हैं क्योंकि उन्होंने शासनके लिये प्रतिनिधि चुने हैं, तो वे इस धोखेमें क्यों आते हैं?

किसी भी सरकारका मातहत रहकर मनुष्य कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकता। जितनी बड़ी सरकार होगी, उतना ही अधिक उसका पशुबल होगा और उतनी ही कम स्वतन्त्रता होगी। मिश्र जातियोंको एक सङ्गठनके मातहत रखनेके लिये विशेष पशुबलकी आवश्यकता है। छोटी सरकारोंको यद्यपि विशेष पशुबलकी आवश्यकता नहीं होती, परन्तु वहांके अधिवासी अधिकारियोंकी इच्छाके विपरीत काम करना और भी कठिन पाते हैं। इसलिये बड़ी सरकारोंकी तरह वहां भी आजादी नहीं। जबतक सरकारें हैं और उन सरकारोंके अस्तित्वके लिये पशुबल है, तबतक वह स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त हो सकती जो आसानीसे समझमें आ जाती है। सरकारोंके अभावमें लोग स्वतन्त्रतासे वञ्चित किये जा सकते हैं, परन्तु सरकारोंके रहते हुए स्वतन्त्रताका अस्तित्व ही सम्भव नहीं।

जिस तरह कोई आदमी हथकड़ी बेड़ियां पसन्द नहीं करता चाहे वे सोनेकी ही क्यों न बनी हों, उसी तरह किसी तरहकी शासनप्रणाली पसन्द नहीं आनी चाहिये। किसी देशको अपनी स्वतन्त्रता दूसरे देशसे अलग रखनेकी जरूरत नहीं, जरूरत इस बातकी है कि स्वतन्त्रता वास्तवमें हो।

बहुधा देखा गया है कि जो बात बड़ी कठिन मालूम होती है, वह बहुत ही आसानीसे हल हो जाती है। स्वतन्त्रता पानेके लिये अब किसी सरकारसे लड़नेकी जरूरत नहीं। न इस बातकी ही जरूरत है कि सरकारी गुलामी छिपानेके लिये किस

सिद्धान्तको मानकर जीवन व्यतीत करना चाहिये, परन्तु इस सिद्धान्तके अनुसार काम न हुआ, क्योंकि लोग पशुबल आवश्यक समझते रहे। इसी कारण जीवनके अपराध बढ़ते चले गये, कुछ आदमियोंका सुख और अधिकांशका दुःख बढ़ता चला गया।

इधर यह भेद बहुत ज्यादा बढ़ा और उन देशोंके लोगोंको उसका विशेष अनुभव हुआ जो कृषिजीवन त्यागकर सरकारोंके बिछाये हुए जालमें फंस गये, जिसका नाम स्वायत्तशासन है। ये लोग अपने उद्धारका मार्ग इधर उधर देखने लगे। उन्होंने सबकी आजमाइश की, परन्तु एक सीधी बात न मानी कि अपनेको सरकारोंके जालसे छुड़ाया जाये। किसी प्रकारकी सरकारकी आज्ञा न मानी जाये।

रूसमें कृषिजीवन अधिक होनेके कारण इस देशने सबसे पहले नयी क्रान्तिका स्वागत किया। क्रान्ति यद्यपि रूसमें ही उपस्थित हुई, परन्तु उससे कोई देश बच नहीं सकता। रूसको जिस मायाजालका ज्ञान हुआ है, उसका अनुभव सभी देश करेंगे। बड़ी बड़ी सरकारोंके पशुबलमें भाग लेना स्वाधीनता समझी गयी है, परन्तु यह गुलामी है और इस गुलामीके कारण जनताके कष्ट बढ़ गये हैं। यही कष्ट एक दिन सबको इस बातका अनुभव करायेंगे कि सरकारोंकी आज्ञा न मानी जाये। सरकारोंकी आज्ञा न माननेसे उनका नाश बड़ी आसानीसे हो जायेगा।

नयी क्रान्तिके लिये लोगोंको समझ लेना चाहिये कि सरकार, पितृभूमि आदि सब नकली वस्तुएं हैं और जीवन तथा सच्ची स्वतन्त्रता असली चीजें हैं। नकली चीजोंके लिये असली चीजोंको नष्ट न करना चाहिये। असली चीजोंके लिये मनुष्योंको सरकारोंपर अन्धविश्वास न रखना चाहिये और इस अन्धविश्वासके कारण मनुष्योंकी आज्ञा माननी पड़ती है उसे न मानना चाहिये।

राष्ट्र और अधिकारियोंके प्रति इस बदले हुए रुखको प्रकट करना ही युगान्तर है।



* श्री *

पुस्तकोंका नक्शा

सूचीपत्र



'विश्वमित्र' कार्यालय,

२१-१ टेमर लेन, कलकत्ता।

उत्तमोत्तम और शिक्षाप्रद पुस्तकोंका

सूचीपत्र

पञ्जाब-हत्याकाण्ड ।

६ रोमाञ्चकारी चित्रोंसे सुसज्जित ।

मार्शल-लाके दिनोंमें पञ्जाबके भाइयोंपर किये गये भयङ्कर अत्याचारोंका पूरा वर्णन यदि आप जानना चाहते हैं, तो इस पुस्तकको फौरन् मंगाकर पढ़िये। इसके पढ़नेसे आपको पता चलेगा, कि किस प्रकार सरेआम लोगोंके कोड़े लगाये गये, उन्हें पेटके बल रेंगनेको बाध्य किया गया, तथा भले घरकी बहू-बेटियोंकी इज्जत खराब की गयी। प्रत्येक भारतवासीका कर्तव्य है कि वह इस पुस्तकको एक बार अवश्य पढ़े। हण्टर कमेटी तथा कांग्रेस कमेटीकी रिपोर्ट भी इसमें शामिल है। सर्वसाधारणके सुभीतेके लिये ३०० पृष्ठोंकी पुस्तकका दाम केवल १) ही रखा गया है। महात्मा गान्धीका आदेश है कि प्रत्येक भारतवासी पञ्जाबकी घटनाओंका परिचय प्राप्त करे, इसीलिये यह पुस्तक इतने अल्प दाममें मिलती है। वास्तवमें इस पुस्तकको पढ़ लेने बाद शायद ही कोई ऐसा अभागा भारतवासी हो जो देशको स्वराज्य दिलानेके पवित्र कार्यमें उत्साह दिखानेको तयार न हो जाये।

नियम और सूचनाएं।

१। पुस्तकोंके दाम नकद लिये जाते हैं। बिकी हुई पुस्तक वापस नहीं ली जाती है।

२। सार्वजनिक संस्थाओं तथा थोक खरीदारोंको २५) से अधिककी पुस्तकें लेनेपर उचित कमीशन दिया जाता है।

३। एक रुपयेसे कमका वी० पी० नहीं भेजा जाता। इससे कम दामकी पुस्तकें मंगानेवालोंको पुस्तकोंका दाम डाकव्यय सहित टिकटके रूपमें भेजना चाहिये।

४। पुस्तकोंका आर्डर देते समय पत्र हिन्दी या अंग्रेजीमें साफ साफ पते ठिकानेके सहित लिखना चाहिये।

५। वी० पी० में किसी प्रकारकी भूल जान पड़े तो वी० पी० वापस न कर हमें फौरन् लिखना चाहिये। लिखनेपर भूल सुधार दी जाती है।

६। यदि पुस्तकें रेलवेद्वारा मंगाना हो तो पासके रेलवे स्टेशनका नाम भी लिखना चाहिये।

७। अधिक पुस्तकें मंगानेवालोंको चौथाई रुपया पेशगी भेजना चाहिये।

८। पुस्तकें समयपर स्टाकमें नहीं भी रहती हैं। पुस्तकोंका मूल्य घटबढ़ भी सकता है।

९। यदि आर्डर भेजे १० दिन हो जायें और पुस्तकें या कोई उत्तर न मिले तो दूसरा आर्डर भेजना चाहिये।

मैनेजर,

'विश्वमित्र' कार्यालय,

कलकत्ता।

उत्तमोत्तम और शिक्षाप्रद पुस्तकोंका

सूचीपत्र

पञ्जाब-हत्याकाण्ड।

६ रोमाञ्चकारी चित्रोंसे सुसज्जित।

मार्शल-लाके दिनोंमें पञ्जाबके भाइयोंपर किये गये भयङ्कर अत्याचारोंका पूरा वर्णन यदि आप जानना चाहते हैं, तो इस पुस्तकको फौरन् मंगाकर पढ़िये। इसके पढ़नेसे आपको पता चलेगा, कि किस प्रकार सरेआम लोगोंके कोड़े लगाये गये, उन्हें पेटके बल रेंगनेको बाध्य किया गया तथा भले घरकी बहू-बेटियोंकी इज्जत खराब की गयी। प्रत्येक भारतवासीका कर्तव्य है कि वह इस पुस्तकको एक बार अवश्य पढ़े। हण्टर कमेटी तथा कांग्रेस कमेटीकी रिपोर्ट भी इसमें शामिल है। सर्वसाधारणकी सुभीतेके लिये २०० पृष्ठोंकी पुस्तकका दाम केवल १) ही रखा गया है। महात्मा गान्धीका आदेश है कि प्रत्येक भारतवासी पञ्जाबकी घटनाओंका परिचय प्राप्त करे, इसीलिये पुस्तक इतने कम दाममें मिलती है। वास्तवमें इस पढ़ लेने बाद शायद ही कोई ऐसा अभागा ... न स्वराज्य दिलानेके पवित्र कार्यमें उत्साह हो जाये।

नियम और सूचनाएं।

१। पुस्तकोंके दाम नकद लिये जाते हैं। बिकी हुई पुस्तक वापस नहीं ली जाती हैं।

२। सार्वजनिक संस्थाओं तथा थोक खरीदारोंको २५) से अधिककी पुस्तकें लेनेपर उचित कमीशन दिया जाता है।

३। एक रुपयेसे कमका वी० पी० नहीं भेजा जाता। इससे कम दामकी पुस्तकें मंगानेवालोंको पुस्तकोंका दाम डाकव्यय सहित टिकटके रूपमें भेजना चाहिये।

४। पुस्तकोंका आर्डर देते समय पत्र हिन्दी या अंग्रेजीमें साफ साफ पते ठिकानेके सहित लिखना चाहिये।

५। वी० पी० में किसी प्रकारकी भूल जान पड़े तो वी० पी० वापस न कर हमें फौरन् लिखना चाहिये। लिखनेपर भूल सुधार दी जाती है।

६। यदि पुस्तकें रेलवेद्वारा मंगाना हो तो पासके रेलवे स्टेशनका नाम भी लिखना चाहिये।

७। अधिक पुस्तकें मंगानेवालोंको चौथाई रुपया पेशगी भेजना चाहिये।

८। पुस्तकें समयपर स्टाकमें नहीं भी रहती हैं। पुस्तकोंका मूल्य घटबढ़ भी सकता है।

९। यदि आर्डर भेजे १० दिन हो जायें और पुस्तकें या कोई उत्तर न मिले तो दूसरा आर्डर भेजना चाहिये।

मैनेजर,

'विश्वमित्र' कार्यालय,

कलकत्ता।

और शिक्षाप्रद कविताओंसे परिपूर्ण है। 'हिन्दी बंगवासी' आदि पत्रोंने इस संग्रहकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है और हिन्दी पाठकों-से अनुरोध किया है कि वे इसे पढ़कर अपना चित्त प्रफुल्लित करें। हिन्दी उर्दूके प्रायः सभी सुकवियोंकी कविताका स्वाद चखनेको मिल जायेगा। एण्टीक कागजपर छपी हुई तीन सौ पृष्ठकी सुनहली बढ़िया जिल्द बंधी पुस्तकका मूल्य २) है।

जेलके यात्री।

भारतके वर्तमान राजनीतिक क्षेत्रमें जिन जिन नेताओंने कार्य कर जेलयात्रा की है उनका जीवनचरित्र, जेलके अनुभव आदि बातें जाननेके लिये हिन्दी पाठक बड़े उत्सुक रहते हैं। एक एक नेताकी जीवनी अलग अलग मंगानेसे आठ आना, बारह आना और एक रुपया खर्च हो जाता है। डाक महसूल भी अधिक लग जाता है। इस असुविधा और अपव्ययको दूर करनेके लिये वर्तमान पुस्तकमें लोकमान्य तिलक, योगी अर-विन्द, महात्मा गान्धी, पञ्जाबकेशरी ला० लाजपतराय, महा-महाराष्ट्र कांग्रेसके निर्वाचित अध्यक्ष देशबन्धु दास, मुसलमानोंके हृदयसम्राट् अली भाई, पूज्यपाद पण्डित मोतीलाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, डा० किचलू, बङ्गालके तपस्वी नेता पण्डित श्यामसुन्दर चक्रवर्तीका जीवन विस्तारपूर्वक दे दिया गया है। प्रत्येक नेताके जीवनकी उल्लेखनीय

स्वराज्य संग्राम।

स्वराज्य और खिलाफतके सम्बन्धमें महात्मा गान्धीने समय समयपर जो प्रभावशाली लेख लिखे तथा अधिकारियोंकी स्वार्थपरता और सङ्कीर्णनीतिकी जिस जोशीली भाषामें निन्दा की वह भारतके वर्तमान इतिहासमें उल्लेखनीय बात समझी जायेगी। महात्माजीके लेखोंका हिन्दी अनुवाद स्वल्प मूल्यमें सर्वसाधारणको प्राप्त हो इसी उद्देश्यसे यह पुस्तक तैयार की गयी है। पुस्तककी भाषा इतनी सरल रखी गयी है कि साधारण हिन्दी ज्ञान रखनेवाले भी उसे बड़ी आसानीसे समझ सकते हैं। सुन्दर एण्टीक पेपरपर छापी गयी है और मुखपृष्ठपर महात्माजीका चित्र भी दे दिया गया है। पुस्तकका मूल्य केवल ॥) आठ आना है।

राष्ट्रीय सिंहनाद।

यह क्या पुस्तक है। निर्जीव आत्माओंमें भी जान डाल देनेवाली चुनी हुई जोरदार हिन्दी उर्दू कविताओंका अपूर्व संग्रह है। इसे पढ़नेसे आपका दिल एक बार अवश्य ही फड़क उठेगा। 'कृषक विलाप' पढ़ते ही भारतकी वर्तमान दुर्दशाका जीता जागता चित्र आंखोंके सामने उपस्थित हो जायेगा। 'वन्दे-मातरम्' गायन पढ़कर हृदयमें देशभक्तिकी तरंगें उत्पन्न हो जायेंगी। 'असहयोग', 'चरखा' और 'कारावास'के गान पढ़कर हृदयमें स्वावलम्बनके भाव जागृत हो उठेंगे। पुस्तक सामयिक

और शिक्षाप्रद कविताओंसे परिपूर्ण है। 'हिन्दी बंगवासी' आदि पत्रोंने इस संग्रहकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है और हिन्दी पाठकोंसे अनुरोध किया है कि वे इसे पढ़कर अपना चित्त प्रफुल्लित करें। हिन्दी उर्दू के प्रायः सभी सुकवियोंकी कविताका स्वाद चखनेको मिल जायेगा। एण्टीक कागजपर छपी हुई तीन सौ पृष्ठकी सुनहली बढ़िया जिल्द बंधी पुस्तकका मूल्य २) है।

जेलके यात्री।

भारतके वर्तमान राजनीतिक क्षेत्रमें जिन जिन नेताओंने कार्य कर जेलयात्रा की है उनका जीवनचरित्र, जेलके अनुभव आदि बातें जाननेके लिये हिन्दी पाठक बड़े उत्सुक रहते हैं। एक एक नेताकी जीवनी अलग अलग मंगानेसे आठ आना, बारह आना और एक रुपया खर्च हो जाता है। डाक महसूल भी अधिक लग जाता है। इस असुविधा और अपव्ययको दूर करनेके लिये वर्तमान पुस्तकमें लोकमान्य तिलक, योगी अरविन्द, महात्मा गान्धी, पञ्जाबकेशरी ला० लाजपतराय, अहमदाबाद कांग्रेसके निर्वाचित अध्यक्ष देशबन्धु दास, मुसलमानोंके हृदयसम्राट अली भाई, पूज्यपाद पण्डित मोतीलाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, डा० किचलू, बङ्गालके तपस्वी नेता पण्डित श्यामसुन्दर चक्रवर्तीका जीवन विस्तारपूर्वक दे दिया गया है। प्रत्येक नेताके जीवनकी उल्लेखनीय घटनाका

समावेश इस पुस्तकमें किया गया है। नेताओंने कारावासमें रहकर जो कष्ट सहे उनका भी उल्लेख इस पुस्तकमें किया गया है तथा नेताओंके जोरदार सन्देश भी दे दिये गये हैं। इतनी सामग्री देनेके बाद पुस्तकमें एक दर्जनके लगभग चित्र भी हैं जिससे पुस्तक संग्रह करने योग्य बन गयी है। पुस्तक उपादेय और लाभदायक होनेपर भी सर्वसाधारणको केवल १) में मिलती है। पृष्ठसंख्या तीन सौसे भी अधिक होनेपर भी इतना सस्ता दाम केवल प्रचारकी दृष्टिसे रखा गया है। अब हिन्दी पाठकोंको अपने आराध्य नेताओंकी जीवनी अलग अलग न मंगाकर केवल इसी एक पुस्तकको मंगाकर पढ़ लेना चाहिये। उनका उद्देश्य पूर्ण हो जायेगा। महान् पुरुषोंकी जीवनीमें जादूकी शक्ति हुआ करती है। मनुष्यके चरित्रपर उसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसलिये इस पुस्तकको अवश्य पढ़ना चाहिये।

श्रीमद्भगवद्गीता।

भला ऐसा कौन भारतवासी होगा जो अपने पवित्र ग्रन्थ गीताकी एक प्रति अपने घरमें रखनेकी इच्छा न रखता हो। साधारण हिन्दीका ज्ञान रखनेवाले भी इसके गूढ़ अर्थको समझ कर लाभ उठावें इसी उद्देश्यसे प्रत्येक श्लोकके नीचे उसका सरल अर्थ भी दिया गया है। सुन्दर जिल्द बंधी पुस्तक केवल ॥) में मिलती है।

गुलामीसे उद्धार।

जबसे भारतमें महात्मा गांधीने अहिंसात्मक असहयोग आरम्भ किया है लोगोंका ध्यान रूसके सुप्रसिद्ध असहयोगाचार्य महात्मा टालसटायकी ओर गया है, क्योंकि पशुबलसे स्थापित सरकारोंके प्रति अहिंसात्मक असहयोग करनेकी बात इन्हीं दार्शनिकने बड़ी अपूर्व युक्तियां पेश कर कही है। महात्मा गांधीने इनके विचारोंका प्रचार भारतमें अपने तपोवलसे कर दिखाया है। सरकारोंकी पोल महात्मा टालसटायने बड़े अपूर्व ढङ्गसे खोली है और वर्तमान गुलामीके अनेक कारण बड़े ही उत्तम ढङ्गसे बताये हैं। उनकी दलीलें बड़ी ही मनोरञ्जक मालूम होती हैं और उनकी लेखनशैली भी बड़ी जोरदार है। सरकारें स्वार्थसाधनके लिये जिन गुप्त उपायोंसे अनर्थ किया करती हैं उनका उल्लेख महात्मा टालसटायने बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें किया है। उन्होंने गुलामीसे उद्धार पानेके लिये अनेक उपाय बताये हैं। प्रस्तुत पुस्तकमें उनके अनेक लेखोंका संग्रह दे दिया गया है। साथ ही उनका संक्षिप्त जीवनचरित्र और चित्र भी जोड़ दिया गया है। महात्मा गांधीने भारतीयोंसे अनुरोध किया है कि वे टालसटायके इस ग्रन्थका अवश्य ही अवलोकन करें। अनुवादकी भाषा बड़ी सरल रखी गयी है और लेखकके मूलभावोंकी रक्षा की गयी है। पुस्तक वास्तवमें अपने ढङ्गकी निराली ही हुई है। दाम केवल १) । प्रत्येक

असहयोगीको यह किताब अवश्य पढना चाहिये। महात्माजीकी कार्य-प्रणालीका पता इस पुस्तकके अध्ययनसे भली भांति लग जायेगा। भारत विरोधी गोरे पत्र इस बातसे बहुत बिगड़े हैं कि टालसटायके लेखोंके अनुवादोंका प्रचार भारतमें हो रहा है।

मेवाड़-गौरव।

हिन्दूसूर्य प्रात स्मरणीय महाराणा प्रतापकी जन्मभूमि मेवाड़-का इतिहास भारतवासियोंके गौरवकी वस्तु है। एक महाराणा प्रतापका ही नहीं, उनके पूर्वजों और कई उत्तराधिकारियों का शासनकाल अनेक उल्लेखनीय घटनाओंसे भरा हुआ है इसलिये जिन लोगोंने महाराणा प्रतापका जीवन पढ़ लिया है वे यह न समझें कि मेवाड़में स्वाधीनताप्रेमी यही एक वीर हुआ है। प्रस्तुत पुस्तक पढ लेनेसे पता लगेगा कि मेवाड़ने कैसे कैसे वीर नरनारियोंको जन्म दिया। किस तरह महाराणाओंने एक ही बार अपने ११ पुत्रोंका बलिदान कर दिया, किस तरह प्रजाप्रेमसे प्रेरित होकर महीनों पेड़की छाल खायी। स्त्रियोंने किस तरह अस्त्र धारणकर मातृभूमिकी रक्षा की। वीर सरदारने किस तरह अपनी स्त्रीका कटा हुआ शिर गलेमें बांधकर भीषण युद्ध किया और कटे हुए शिरने किस तरह युद्ध जारी रखा। इस पुस्तकका एक एक पृष्ठ प्रभावोत्पादक घटनासे परिपूर्ण है। पुस्तक एक बार आरम्भ कर देनेसे उसे समाप्त करनेको ही दिल चाहता है। निर्जीव आत्मा जागृत हो जाती

है और भारतीयोंका आदर्श स्वातन्त्र्यप्रेम आंखोंके सामने नाचने लगता है। मेवाड़का भ्रमणकर बड़ी खोज और धनव्ययसे पुस्तक तैयार की गयी है और कई मनोहर चित्र भी दे दिये गये हैं। इसपर भी पुस्तकका मूल्य १) ही रखा गया है। भारतीय गौरवका नकशा इस पुस्तकमें जगह जगहपर मिलता है।

युगान्तर प्रदीपिका।

संसारमें सुख-शान्तिसे जीवन बिताना बड़ा ही दुर्लभ है। जिसके पास धन नहीं वह रातदिन दुखी रहता है और जिसके पास धन है वह भी चिन्तापूर्ण जीवन व्यतीत करता है। बहुत-से आदमी यह नहीं जानते कि आनन्द लाभ किस तरह होता है। देशके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है, सम्मिलित जिम्मेदारी किस चीजका नाम है, सरकारका सङ्गठन देशोपयोगी होनेके लिये किस ढङ्गका होना चाहिये और स्वाधीन नागरिकके क्या कर्तव्य हैं, देशकी खोयी हुई स्वतन्त्रता किस तरह प्राप्त हो सकती है इत्यादि बहुतसी बातोंका साधारण ज्ञान न होनेसे मनुष्य अपना कर्तव्य निश्चित नहीं कर सकता। संसारी अनुभव न रहनेसे अनेक कष्ट झेलता है। प्रस्तुत पुस्तक इसलिये तैयार की गयी है कि लोग देशकालके अनुसार उत्तम जीवन व्यतीत कर सकें, अनेक राजनीतिक प्रश्नोंको सरलतासे हल कर सकें और नाना प्रकारके धर्मोंको स्पष्ट रूपसे समझकर संसारमें उन्नति कर सकें। अनेक पुस्तकोंकी छानबीन तथा अध्ययनके

अनन्तर यह समयोपयोगी पुस्तक तैयार की गयी है जिसे पढ़कर देशवासी अवश्य प्रसन्न होंगे। पुस्तक इस ढङ्गसे लिखी गयी है कि वह उपन्यासकी भांति पढ़ी जाती है और गम्भीर विषयोंको पढ़नेपर भी मानसिक थकावट नहीं होती। पुस्तक का मूल्य १)।

रमता योगी

अथवा

हास्यजनक शिक्षाप्रद लेखोंका संग्रह।

'विश्वमित्र' पत्रके पाठक 'रमता योगी' पढ़कर बड़े प्रसन्न हुआ करते हैं, क्योंकि हास्यजनक व्यङ्गपूर्ण ढङ्गसे शिक्षाप्रद सामयिक बात कही जाती है। गम्भीर विषय बहुत थोड़े आदमियोंको पसन्द आया करता है, परन्तु हास्यजनक लेख अधिकांश मनुष्य पसन्द करते हैं। विलायतमें पञ्चांसनके व्यङ्गपूर्ण लेखोंका बड़ा भारी प्रचार हुआ और उसकी पुस्तक लाखोंकी संख्यामें बिकी। वर्तमान पुस्तक उसी शैलीपर लिखी गयी है और देशकी अनेक कुरीतियोंपर प्रकाश डाला गया है तथा देशद्रोहियोंकी अच्छी तरह खबर ली गयी है। पुस्तक आदिसे अन्ततक शिक्षाप्रद है। पुस्तक पढ़ते ही उदासी कोसों दूर भाग जायेगी और चित्त प्रफुल्लित होनेके साथ ही हृदयपर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ेगा। अनेक पाठकोंके अनुरोधसे पुस्तक तैयार की गयी है। मूल्य एक रुपया।

है और भारतीयोंका आदर्श स्वातन्त्र्यप्रेम आंखोंके सामने नाचने लगता है। मेवाड़का भ्रमणकर बड़ी खोज और धनव्ययसे पुस्तक तैयार की गयी है और कई मनोहर चित्र भी दे दिये गये हैं। इसपर भी पुस्तकका मूल्य १) ही रखा गया है। भारतीय गौरवका नकशा इस पुस्तकमें जगह जगहपर मिलता है।

युगान्तर प्रदीपिका।

संसारमें सुख-शान्तिसे जीवन बिताना बड़ा ही दुर्लभ है। जिसके पास धन नहीं वह रातदिन दुखी रहता है और जिसके पास धन है वह भी चिन्तापूर्ण जीवन व्यतीत करता है। बहुत-से आदमी यह नहीं जानते कि आनन्द लाभ किस तरह होता है। देशके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है, सम्मिलित जिम्मेदारी किस चीजका नाम है; सरकारका सङ्गठन देशोपयोगी होनेके लिये किस ढङ्गका होना चाहिये और स्वाधीन नागरिकके क्या कर्तव्य हैं, देशकी खोयी हुई स्वतन्त्रता किस तरह प्राप्त हो सकती है इत्यादि बहुतसी बातोंका साधारण ज्ञान न होनेसे मनुष्य अपना कर्तव्य निश्चित नहीं कर सकता। संसारी अनुभव न रहनेसे अनेक कष्ट झेलता है। प्रस्तुत पुस्तक इसलिये तैयार की गयी है कि लोग देशकालके अनुसार उत्तम जीवन व्यतीत कर सकें, अनेक राजनीतिक प्रश्नोंको सरलतासे हल कर सकें और नाना प्रकारके धर्मोंका स्पष्ट रूपसे समझकर संसारमें उन्नति कर सकें। अनेक पुस्तकोंकी छानबीन तथा अध्ययनके

अनन्तर यह समयोपयोगी पुस्तक तैयार की गयी है जिसे पढ़कर देशवासी अवश्य प्रसन्न होंगे। पुस्तक इस ढङ्गसे लिखी गयी है कि वह उपन्यासकी भांति पढ़ी जाती है और गम्भीर विषयोंको पढ़नेपर भी मानसिक थकावट नहीं होती। पुस्तकका मूल्य १)।

रमता योगी

अथवा

हास्यजनक शिक्षाप्रद लेखोंका संग्रह।

'विश्वमित्र' पत्रके पाठक 'रमता योगी' पढ़कर बड़े प्रसन्न हुआ करते हैं, क्योंकि हास्यजनक व्यङ्गपूर्ण ढङ्गसे शिक्षाप्रद सामयिक बात कही जाती हैं। गम्भीर विषय बहुत थोड़े आदमियोंको पसन्द आया करता है, परन्तु हास्यजनक लेख अधिकांश मनुष्य पसन्द करते हैं। विलायतमें पडोसनके व्यङ्गपूर्ण लेखोंका बड़ा भारी प्रचार हुआ और उसकी पुस्तक लाखोंकी संख्यामें बिकी। वर्तमान पुस्तक उसी शैलीपर लिखी गयी है और देशकी अनेक कुरीतियोंपर प्रकाश डाला गया है तथा देशद्रोहियोंकी अच्छी तरह खबर ली गयी है। पुस्तक आदिसे अन्ततक शिक्षाप्रद है। पुस्तक पढ़ते ही उदासी कोसों दूर भाग जायेगी और चित्त प्रफुल्लित होनेके साथ ही हृदयपर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ेगा। अनेक पाठकोंके अनुरोधसे पुस्तक प्रकाशित की गयी है। मूल्य एक रुपया।

है और भारतीयोंका आदर्श स्वातन्त्र्यप्रेम आंखोंके सामने नाचने लगता है। मेवाड़का भ्रमणकर बड़ी खोज और धनव्ययसे पुस्तक तैयार की गयी है और कई मनोहर चित्र भी दे दिये गये हैं। इसपर भी पुस्तकका मूल्य १) ही रखा गया है। भारतीय गौरवका नकशा इस पुस्तकमें जगह जगहपर मिलता है।

युगान्तर प्रदीपिका।

संसारमें सुख-शान्तिसे जीवन बिताना बड़ा ही दुर्लभ है। जिसके पास धन नहीं वह रातदिन दुखी रहता है और जिसके पास धन है वह भी चिन्तापूर्ण जीवन व्यतीत करता है। बहुत-से आदमी यह नहीं जानते कि आनन्द लाभ किस तरह होता है। देशके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है, सम्मिलित जिम्मेदारी किस चीजका नाम है, सरकारका सङ्गठन देशोपयोगी होनेके लिये किस ढङ्गका होना चाहिये और स्वाधीन नागरिकके क्या कर्तव्य हैं; देशकी खोयी हुई स्वतन्त्रता किस तरह प्राप्त हो सकती है इत्यादि बहुतसी बातोंका साधारण ज्ञान न होनेसे मनुष्य अपना कर्तव्य निश्चित नहीं कर सकता। संसारी अनुभव न रहनेसे अनेक कष्ट झेलता है। प्रस्तुत पुस्तक इसलिये तैयार की गयी है कि लोग देशकालके अनुसार उत्तम जीवन व्यतीत कर सकें, अनेक राजनीतिक प्रश्नोंको सरलतासे हल कर सकें और नाना प्रकारके धर्मोंको स्पष्ट रूपसे समझकर संसारमें उन्नति कर सकें। अनेक पुस्तकोंकी छानबीन तथा अध्ययनके

अनन्तर यह समयोपयोगी पुस्तक तैयार की गयी है जिसे पढ़कर देशवासी अवश्य प्रसन्न होंगे। पुस्तक इस ढङ्गसे लिखी गयी है कि वह उपन्यासकी भांति पढ़ी जाती है और गम्भीर विषयोंको पढ़नेपर भी मानसिक थकावट नहीं होती। पुस्तक का मूल्य १)।

रमता योगी

अथवा

हास्यजनक शिक्षाप्रद लेखोंका संग्रह।

'विश्वमित्र' पत्रके पाठक 'रमता योगी' पढ़कर बड़े प्रसन्न हुआ करते हैं, क्योंकि हास्यजनक व्यङ्गपूर्ण ढङ्गसे शिक्षाप्रद सामयिक बात कही जाती हैं। गम्भीर विषय बहुत थोड़े आदमियोंको पसन्द आया करता है, परन्तु हास्यजनक लेख अधिकांश मनुष्य पसन्द करते हैं। विलायतमें एडीसनके व्यङ्गपूर्ण लेखोंका बड़ा भारी प्रचार हुआ और उसकी पुस्तक लाखोंकी संख्यामें बिकी। वर्तमान पुस्तक उसी शैलीपर लिखी गयी है और देशकी अनेक कुरीतियोंपर प्रकाश डाला गया है तथा देशद्रोहियोंकी अच्छी तरह खबर ली गयी है। पुस्तक आदिसे अन्ततक शिक्षाप्रद है। पुस्तक पढ़ते ही उदासी कोसों दूर भाग जायेगी और चित्त प्रफुल्लित होनेके साथ ही हृदयपर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ेगा। अनेक पाठकोंके अनुरोधसे पुस्तक तैयार की गयी है। मूल्य एक रुपया।

भारतीय विद्रोह

अथवा

वृटिश शासनके विरुद्ध राजनीतिक षड्यंत्रोंका इतिहास।

यह पुस्तक हिन्दी संसारमें सर्वथा नवीन है। पुस्तकमें बताया गया है कि वृटिश शासनकी जड़ उखाड़नेके लिये भारत और विदेशोंमें किस तरह षड्यन्त्र रचे गये। बम फेंककर किस तरह अधिकारियोंको भयभीत किया गया। लन्दनमें किस तरह केन्द्र स्थापितकर कार्य किया गया। ला० हरदयालने भारतमें गदर करानेके लिये किस तरह उद्योग किया। बड़े लाट लार्ड हार्डिंजपर किस तरह बम फेंका गया। सावरकर किस तरह जहाजसे समुद्रमें कूदकर भागे और उन्होंने क्या क्या कार्य किया। कलकत्तेमें किस तरह युगान्तरका प्रचार हुआ और बङ्गालमें गुप्त समितियोंकी स्थापना किस तरह हुई और दिनदहाड़े आम सड़कोंपर, हाईकोर्टमें और घर बैठे हुए पुलिसअधिकारियोंका खून किस तरह किया गया। नावोंपर सवार होकर किस तरह डाके डाले गये और लाखों रुपया एकत्र किया गया। खुदीराम बोस क्यों फांसीपर लटकाये गये और जेलके अस्पतालमें कन्हाईलाल दत्तने नरेन गोसाईंकी हत्या किस तरह की। जर्मन युद्धमें जर्मनोंने भारतीयोंके साथ क्या क्या षड्यन्त्र रचे और मुसल-

भावोंने क्या क्या काम किये इत्यादि बहुतसी मनोरञ्जक बातें सन् १९०० से सन् १९१८ तककी बड़े अच्छे ढङ्गसे दी गयी हैं। कालेपानीमें भारतीयोंको जो भीषण कष्ट सहने पड़े, उनका भी वर्णन है। भारतीयोंने वहांपर किस तरह तीन-तीन और पांच पांच महीने अन्न न खाकर विताये, जो संसारमें अभूतपूर्व घटना है। कालेपानीके यात्रियोंका चित्र जेलकी पोशाकमें ही बड़े प्रबन्धके बाद लेकर दिया गया है तथा और भी चित्र देकर पुस्तक मनोहर बनायी गयी है। यह सब होनेपर भी पुस्तकका दाम केवल १) रखा गया है। जो इस पुस्तकको न पढ़ेगा वह अवश्य पछतायेगा।

प्रेमाश्रम—ले० श्रीयुत "प्रेमचन्दजी" यह क्या है? भारतकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओंका जीता-जागता चित्र है। इसमें आपको भाषा और भावोंके साथ-साथ पश्चिमीय शिक्षाके कुपरिणाम, असात्रका शोचनीय फल, धन-लोलुपताका हृदयविदारक दृश्य, और पालिसीबाजीके रोमाञ्चकारी दुष्परिणामका दिग्दर्शन मिल जायगा। धर्म, नीति, प्रेम और भारतीयताका मनोहर आदि बातोंका रसास्वादन करना हो जो इसे अवश्य पढ़िये। आपको कितनी ही नयी नयी बातों एवं सामाजिक तथा नैतिक परिस्थितियोंका पता चलेगा। ६५० पृष्ठ मूल्य ३॥)

सेवासदन—हिन्दीका सर्वोत्तम, सुप्रसिद्ध स्वतन्त्र न्यास। इसकी खूबियोंवर बड़ी समालोचनाएं हुई हैं।

पढ़कर पतितसे पतित भी सुधरना चाहेगा। मनोरञ्जकताका कहना ही क्या। स्वदेशी गाढ़े की सुन्दर जिल्द। दूसरा सं० मूल्य २॥)

खरा सोना— बड़ा सरल और सुन्दर उपन्यास। प्रत्येक स्त्री और पुरुषको पढ़कर शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। मू० १)

प्रेम-पूर्णिमा—१५ मनोहर गल्पें। ३ बढ़िया चित्र। रेशमी कपड़ेकी सुनहले अक्षरोंकी सुन्दर सजिल्द पुस्तक। मू०२) यह पुस्तक हिन्दी प्रसिद्ध लेखक प्रेमचन्दजीकी लिखी हुई है।

कर्म्म पथ

यह विचित्र राजनीतिक उपन्यास है। पढ़कर आप बड़े ही प्रसन्न होंगे। मूल्य २)

सुवर्ण-प्रतिमा

यह सामाजिक उपन्यास भी अपने ढङ्गका निराला है। यह उपन्यास बङ्गालके एक बड़े ही नामी उपन्यास-लेखककी रचना है। दार्शनिक पण्डित सुरेन्द्रनाथ भट्टाचार्यका 'मिलन-मन्दिर' जिन्होंने पढ़ा है, उनसे बतलाना व्यर्थ है, कि वे किस तरहके कुशल उपन्यास-लेखक हैं। उन्हींके 'सुवर्ण कुटीर' नामक एक बड़े ही उत्तम सामाजिक उपन्यासका यह अनुवाद है। मूल्य प्रायः तीन सौ पृष्ठकी सुनहरी जिल्द-बंधी पुस्तकका २॥)

इन्दुमती
वा
रत्न-द्वीप।

यह उपन्यास हिन्दीमें अपने ढङ्गका पहला और मनोरञ्जकता-में लासानी है। इसके एक एक पेजमें घटनाओंका ऐसा घटा-टोप है, कौतूहलका ऐसा छिपा हुआ खजाना है, भाषा और भावकी ऐसी मनोहर छटा है, कि क्या मजाल, कि आदमी किताब हाथमें लेकर विना सम्पूर्ण पढ़े छोड़ दे! रेशमी जिल्द वाली पुस्तकका मूल्य ३॥)

सिराजुद्दौला।

भारतके प्रौढ़ इतिहासज्ञ बाबू अक्षय कुमार मैत्रेय लिखित सिराजुद्दौलाके समयका सच्चा इतिहास। यदि आप कलकत्तेकी ऐतिहासिक कालकोठरीका सच्चा वृत्तान्त तथा उस समयके इतिहासकी सच्ची समालोचना देखना चाहते हों तो इसे देखिये। मूल्य २)

राज्य-सम्बन्धी-सिद्धान्त।

पुस्तक ऐसे ढङ्गसे लिखी गयी है, कि राज्य-सम्बन्धी कोई भी बात छूटने नहीं पायी है। इसमें यह भली भांति समझाया गया है, कि राजाका प्रजाके प्रति तथा प्रजाका राजाके प्रति क्या कर्त्तव्य है, राज्य कितने प्रकारके होते हैं, राज्य रचना कैसे और क्यों हुई। बड़े टाइपमें छपी हुई सजिल्द और सचित्र २२० पृष्ठकी पुस्तकका मूल्य १।)

अन्य सामयिक पुस्तकें।